सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 14

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष-शास्त्र

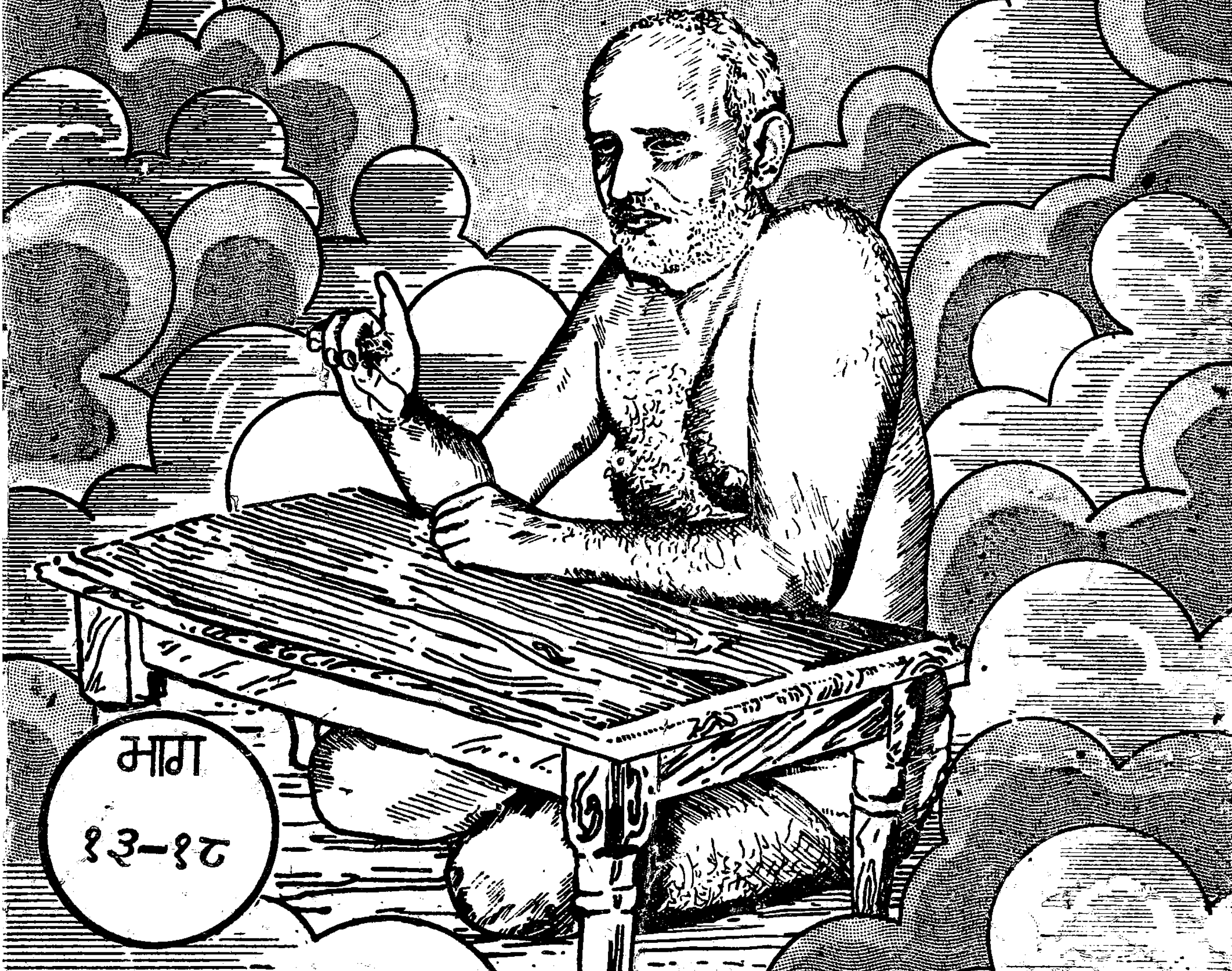

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला 13 से 14 भाग
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमत्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

चतुर्दश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

मोक्षशास्त्र के प्रथम व द्वितीय अध्याय के व्याख्येयों का संक्षिप्त दिग्दर्शन—इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थ में ही प्रथम यह बताया है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है। इसकी व्याख्या में सम्यक्त्व का स्वरूप पहले कहा कि तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। तो वे तत्त्वार्थ कितने हैं उनका नाम दिया जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान होना, वस्तु स्वरूप सहित तत्त्वों का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। तो इन ७ तत्त्वों जानकारी के लिये प्रथम अध्याय में उपाय बताया है कि किन-किन उपायों से पदार्थ का परिचय होता है। तो प्रथम तो निक्षेप बताया गया जिससे कि व्यवहार बना। फिर जानकारी के उपायों में मुख्य उपाय प्रमाण और नय कहा गया है। अन्य अनुयोग द्वार भी पदार्थ के जानने के उपाय हैं, फिर भी मुख्यतया प्रमाण नय उपाय हैं सो प्रमाण का विशेष वर्णन किया फिर नयों का वर्णन किया। इस तरह प्रथम अध्याय में पदार्थों के जानने के उपायों का भली-भाँति विवेचन किया है। नयों के बिना हम कुछ भी पदार्थ परिचय में नहीं बढ़ सकते, सो नयों के द्वारा पदार्थों का, एक-एक धर्म स्वरूप का परिचय होता है, किन्तु पदार्थ केवल एक धर्ममात्र नहीं है, अतएव समस्त धर्मों का परिचय कराने वाला प्रमाण है। और यों प्रमाण और नयों से जीवादिक तत्त्वों का सम्यग्दर्शनादिक का सबका परिचय होता है। यों प्रथम अध्याय में पदार्थों के परिचय करने के उपायों का वर्णन किया। उसके बाद यह आवश्यक हुआ कि उन जीवादिक ७ तत्त्वों का ठीक परिचय कराया जाए। तो फिर दूसरे तीसरे चौथे अध्यायों में जीव तत्त्व का परिचय कराया जाता है। जिसमें द्वितीय अध्याय में सर्वप्रथम जीव के स्वतत्त्व का वर्णन किया। जीव के क्या-क्या भाव होते हैं, क्या-क्या परिणतियाँ होती हैं और जीव का क्या स्वरूप है, स्वभाव है इस बात को ५३ भावों के विस्तार में बताया है। इसके बाद जीव का लक्षण कहा गया। उपयोग जीव का लक्षण है। उपयोग के नाते से फिर उपयोग वाले जीव के भेद किए गए। उपयोग वाले जीव पदार्थ दो प्रकार के हैं मुक्त और संसारी जिनमें से मुक्त का परिचय तो कोई अधिक नहीं कराया जा सकता, क्योंकि वह एक स्वरूप है, अमूर्त है, बंधनरहित है, और आँखें कभी उनका कोई प्रसंग भी नहीं दिख सकता। साथ ही उपयोग मुक्त जीव में उपचार से है, संसारी जीवों में मुख्य है तो ऐसे ही ये मुख्य उपयोगी संसारी जीव कितनी तरह के है, उनका परिचय दूसरे अध्याय में कराया गया है। ये संसारी जीव दो प्रकार के हैं—(१) त्रस और, (२) स्थावर, फिर मन सहित, मन रहित, फिर इन्द्रिय के माध्यम से एकेन्द्रिय, दो-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, ये भेद किए गए हैं, इन्द्रिय की कैसी रचना होती है ? इस प्रसंग में भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय का वर्णन हुआ। जब उपयोग का वर्णन हुआ, उसके बाद योग का वर्णन आवश्यक समझा गया तो योग तो जीवों के प्रदेश का परिस्पद है, यह कहां किस तरह होता है ? तो विग्रह गति से योग की बात प्रारम्भ की गई। उस योग से मिलता है फिर शरीर। शरीर का वर्णन किया। तो शरीर सम्बन्धित जो कुछ ज्ञातव्य विषय था उसका वर्णन किया। इस तरह सामान्य तथा जीव तत्त्व का वर्णन द्वितीय अध्याय में हुआ।

तृतीय अध्याय में नरक भूमि सम्बन्धित समाचारों का वर्णन—अब तृतीय अध्याय में जीव के रहने के स्थान की बात कही गई है कि ये जीव रहते कहाँ-कहाँ है ? तो यह लोक तीन भागों में विभक्त है अधोलोक, मध्यलोक और अर्द्ध लोक। तो सबसे पहले अधोलोक का वर्णन किया। अधोलोक में मुख्यतया नारकी जीव रहते हैं, यद्यपि पहली पृथ्वी में ऊपर के दो भागों में भवनवासी और और व्यन्तरों के भी बड़े सुन्दर महल हैं, रमणीक चैत्यालयों से सम्पन्न सुख के साधनभूत हैं, पर उनके नीचे प्रथम नरक है फिर और नीचे-नीचे अलग-अलग भूमियाँ हैं उनमें नरक हैं, उन नरकों में क्या स्थिति है, कैसे नारकी हैं, उनकी आयु कितनी है, कैसा कष्ट पाते हैं, यह सब वृत्तान्त नारकी सम्बन्धी किया गया है। यह अधोलोक ७ पृथ्वियों में विस्तृत है। यह सब बताने के बाद अब इस समय अधोलोक से ऊपर के लोक के वर्णन का प्रारम्भ होना चाहिए, उसका ही क्रम है। तो अब तिर्यक लोक का वर्णन प्रारम्भ किए जाने योग्य है, तिर्यक लोक कहते हैं, मेरू पर्वत के बराबर ऊँचा और मेरू पर्वत की जड़ तक नीचे उतने क्षेत्र में तिर्यक रूप में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में जहाँ तक लोक का फैलाव है उसको तिर्यक लोक कहते हैं। तो तिर्यक लोक में कौन सी चीज वर्णन की जानी चाहिए। जो कुछ रचना है द्वीप, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र, परिणाम, संख्या आदिक यह सब वर्णन करने के योग्य है, तो उनका वर्णन करने के लिए सर्वप्रथम सूत्र कहते हैं—

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥

जम्बूद्वीप नाम की सार्थकता व त्रियंकलोक की रचना—जम्बूद्वीप, लवणोदसमुद्रआदिक अच्छे-अच्छे नाम वाले अनेक द्वीप समुद्र हैं, तिर्यक लोक में असंख्याते द्वीप समुद्र हैं, उनकी रचना बतायी जाएगी। तिर्यक् लोक नाम भी तो इसीलिये रखा गया है कि दिशाओं में फैलाव रूप से जो रचना बनी हुई है, जैसे यही रचना जम्बूद्वीप से लेकर स्वयं भूरमण समुद्र पर्यन्त समस्त द्वीप समुद्रों की रचना है, ये सब जहाँ हैं उसे तिर्यक् लोक कहते हैं। तो तिर्यक् लोक में जम्बूद्वीपादिक अनेक द्वीप हैं, लवणोद आदिक अनेक समुद्र हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इसका नाम जम्बूद्वीप क्यों रखा गया ? हम आप सब जम्बूद्वीप में ही तो रह रहे हैं। रह रहे हैं एक कोने पर, जम्बूद्वीप के एक हिस्से में, जिसका नाम भारत क्षेत्र है, पर हम आप सब जम्बूद्वीप में निवास कर रहे हैं। इसका नाम जम्बू द्वीप क्यों रखा गया ? इसका कारण यह है कि इस जम्बू द्वीप में एक खास जगह पर एक पृथ्वीवाचक जम्बू वृक्ष है और उस जम्बू वृक्ष की मुख्यता के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप रखा गया है। इस जम्बूद्वीप में जो कि गोल है, जिसके बीच में ६ पर्वत पड़े हैं उनके कारण इसके ७ भाग हो गए हैं। जो ७ क्षेत्रों के नाम से कहे जाते हैं, उनमें सबसे बीच का जो क्षेत्र है उसका नाम है विदेह क्षेत्र। उस विदेह क्षेत्र में सबसे बीच में याने मेरू पर्वत के आसपास उत्तम भोग भूमि की रचना है। तो मेरू पर्वत के उत्तर भाग में जो भोग भूमि है उसका नाम है उत्तर कुरु। उत्तर कुरु के बीच

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में केवल कुछ ऊँचाई को लिये हुये एक गोल क्षेत्र है जो ५०० योजन लम्बा-चौड़ा है और इसी के अनुसार इससे तिगुणा उसकी परिधि है, इसे जगती कहते हैं। यह जगती ऊपर उठती गई और कम-कम होती गई। तो यह मध्य में १२ योजन मोटी हो गई। और ऊँचे चलते-चलते दो कोश की मोटी रह गई। यह सब एक वेदिका को घेरे हुए है। उसके ठीक बीच में एक नाना रत्नों का पीठ है जो ८ योजन का लम्बा है, चार योजन का चौड़ा है और इतना ही ऊँचा है, वह १२ वेदिकाओं से घिरा हुआ है। इन सब वेदिकाओं के चारों दिशाओं में चार-चार द्वार हैं। इन सबके बीच में सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष है। जम्बू द्वीप के बीच रहने वाले मेरू का नाम भी सुदर्शन है और उस मेरू के पास उत्तर दिशा में जो एक पृथ्वी काय का जम्बू वृक्ष है, वृक्ष क्या, वह तो एक पृथ्वी है, मगर इसका आकार ऐसा है कि जैसा जम्बू वृक्ष का आकार होता है, इस वृक्ष पर कुछ अकृत्रिम चैत्यालय भी हैं। यह एक ठोस बज्रमय पृथ्वी का बना हुआ है। तो वह सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष जिसका तना दो योजन का ऊँचा है, जिसका फैलाव ६ योजन का ऊँचा है, मध्य में ६ योजन चौड़ा उसका गोल मण्डल है, ऐसे वहां अन्य १०८ जम्बू वृक्ष और हैं जहाँ पर देव-देवियों का विहार होता है, बड़ा सुरम्य स्थान है, इस जम्बू वृक्ष के योग से इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पड़ा।

जम्बू द्वीप को घेरकर जम्बू द्वीपसमासमेतसमस्त तिर्यंकलोक के विस्तार का दिग्दर्शन—उस जम्बू द्वीप को घेरे हुये लवण समुद्र है, जम्बूद्वीप जहां समाप्त होता है, गोल आकार वाला है थाली की तरह चिपटा है। जम्बूद्वीप की सीमा जहाँ समाप्त होती है चारों तरफ गोल एक बेदिका बनी हुई है, उसके बाद लवण समुद्र शुरू होता है। इसका नाम लवण समुद्र क्यों रखा कि इसका जल खारा है। खारे गुण वाले जल के सम्बन्ध से इस समुद्र का नाम लवणोद पड़ा। लवण और उदक, उदक शब्द की सिद्धि होने से यहाँ समास में उद रह गया। नमक की तरह खारा जल जहाँ है उसे लवणोद कहते हैं। सूत्र में शब्द दिया है—जम्बूद्वीप लवणो दादयः। इसमें तीन शब्द हैं—जम्बूद्वीप, लवणोद आदि। समास होने पर अर्थ हुआ कि जम्बूद्वीप और लवणोद है आदि में जिसके ऐसे अनेक द्वीप समुद्र हैं। जम्बूद्वीप तो द्वीप हैं और लवणोद समुद्र है, इस तरह से आगे-आगे जितने द्वीप समुद्र हैं, उन समुद्रों के बाद द्वीप घेर करके उसके बाद समुद्र, उसके बाद द्वीप ऐसे र-घेर घेकरके असंख्याते द्वीप समुद्र पाये जाते हैं, उनका नाम बड़ा शुभ है। लोक में जैसे अच्छ नाम होते हैं वैसा ही अच्छा नाम है उनका। जैसे प्रथम ७ द्वीप और ८ समुद्र के नाम देखिये—सब द्वीप समुद्र के नाम तो रखे ही नहीं जा सकते, क्योंकि ये असंख्याते हैं फिर भी प्रारम्भ के ८ द्वीप समुद्र के नाम और अन्त के ८ द्वीप समुद्र के नाम यहाँ गाये जाते हैं तो शुरू के जो द्वीप समुद्र हैं वे इस प्रकार हैं जम्बू द्वीप, लवणोद, धातुकी खण्ड, कालोद, पुष्करवर, पुष्करोद, वारुवीवर, वारुणोद, क्षीरवर, क्षीरोद, घृतवर, घृतोद, इक्षुवर, इक्षुद, नन्दीश्वरवर, नन्दीश्वरोद इन द्वीप समुद्रों के जैसे-जैसे नाम हैं उनका जो अर्थ है, वैसी ही उनकी विशेषता है। इस प्रकार असंख्याते द्वीप समुद्र पाये जाते हैं जिनमें अन्तिम द्वीप का नाम है स्वयंभूरमण द्वीप। और अन्तिम समुद्र का नाम हैं स्वयंभूरमण समुद्र।

लोक के प्रमाण का दिग्दर्शन—इससे कुछ आगे का क्षेत्र भी त्रिर्यग्लोक में है। ये सब द्वीप समुद्र कितने असंख्याते हैं? उसका प्रमाण है कि ढाई सागर प्रमाणकाल में जितने समय होते हैं उतनी संख्या में द्वीप समुद्र हैं। बहुत असंख्याते हैं। जब एक सेकेण्ड में कितने समय होते हैं? वे ही ही अनगिनते हैं तो फिर मिनट, फिर घण्टा, दिन, रात, हजार वर्ष, अरब वर्ष, पल्य, कोड़ा-कोड़ी पल्य, सागर, ढाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सागर—तो वहुत समय होता है, उस ढाई सागर प्रमाण में जितने समय हों उतने द्वीप समुद्र हैं। अब इससे अन्दाज लगा सकते हैं कि जम्बू द्वीप तौ एक लाख योजन के विस्तार का है और उससे दूना समुद्र, उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, ये तो दूने दूने चले गये हैं और हैं ये सब उतने असंख्यात कि ढाई सागर प्रमाण काल में जितने समय होते, उतने। तो अब कितना बड़ा क्षेत्र हुआ ? यह सब क्षेत्र एक राजू से भी कुछ कम है, और ऐसा ऐसा एक राजू चौड़ा मोटा माने उसे कहते हैं एक घनराजू। इस तरह ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है। लोक की रचना इस ढंग से है कि जैसे मानो ७ आदमी एक समान ऊँचाई वाले एक के पीछे एक खड़े हों पैर फैलाकर, हाथों को कमर पर रखकर, तो जो उनका संस्थान बना उस तरह का लोक का संस्थान है। तो जब सामने से देखते हैं तो नीचे फैला हुआ है लोक, बीच में सिकुड़ा है कुछ और ऊपर जाकर फैला है, फिर सिकुड़ गया, पर पीछे देखो तो सब जगह ७-७ राजू मोटा है, लोक में उस स्थान को परखिये जहाँ चौथा आदमी खड़ा है, उस चौथे आदमी के मानो गर्दन प्रमाण नीचे तक का जो क्षेत्र है उसका नाम त्रसनाली है। इस त्रसनाली में ही नीचे नरकों की रचना है और मेरु पर्वत के आस-पास यिर्यक लोक की रचना है। इस तिर्यक लोक में ये असंख्याते द्वीप समुद्र हैं। अब बतलाते हैं कि असंख्या से द्वीप समुद्र किस आकार में पड़े हुए हैं ?

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

ये द्वीप और समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले और पहले-पहले को बेढ़े हुए चूड़ी के आकार वाले हैं। दूने-दूने विस्तार वाले, अर्थात जितना विस्तार जम्बूद्वीप का है उससे दूना विस्तार लवण समुद्र का है। जितना लवण समुद्र का विस्तार है उससे दूना धातुकी खण्ड का है। इस तरह दूने-दूने विस्तार वाले द्वीप समुद्र चलते गये हैं और वे पहले-पहले को बेढ़े हुए हैं। लवणसमुद्र ने जम्बूद्वीप को बेढ़ा है, आखिरी समुद्र ने आखिरी द्वीप को बेढ़ा है। उसके भीतर जो और समुद्र हैं उसे द्वीप ने बेढ़ा है, याने जम्बूद्वीप को छोड़कर बाकी समस्त द्वीप समुद्र चूड़ी के आकार की तरह गोल-गोल हैं। विशाल विष्कम्भ वाले हैं। बीच में उसकी रचना नहीं है। इस द्वीप समुद्र की रचना अटपट नहीं है, किसी भी दिशा में कहीं कोई द्वीप हो, कहीं कोई समुद्र हो ऐसा नहीं, किंतु वे सब एक दूसरे का बेढ़ करके बने हुए हैं इसीलिये सूत्र में पूर्व-पूर्व परिक्षेपिण: शब्द दिया है। यह अन्य आकार में नहीं है कि कोई द्वीप चौड़ा हो, तिखूटा हो, कोई समुद्र और ढंग का हो, वे सब गोल आकार में हैं, इसो कारण सूत्र में बलयाकृतया: शब्द दिया है चूड़ी के आकार वाले। ये असंख्याते द्वीप समुद्र अपने से पहले वाले द्वीप और समुद्र को घेरे हुए ये सब द्वीप समुद्र हैं, और वे पहले से आगे-आगे दूने-दूने विस्तार वाले हैं। यहाँ तक जो कहा गया सो समझ बने लेकिन जब तक यह न बताय जाय कि जम्बूद्वीप कितने विस्तार का है तब तक आगे के द्वीप समुद्र का विस्तार नहीं समझा जा सकता। दूने-दूने विस्तार वाले हैं, पर हैं कितने बड़े ? यह बात तब ही जानी जायेगी जब जम्बूद्वीप का विस्तार बताया जाय। तो अब जम्बूद्वीप का ही विस्तार बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जम्बूद्वीपः ॥९॥

जम्बू द्वीप के स्थान आकार विस्तार आदि का दिग्दर्शन—उन समस्त द्वीप समुद्रों के बीच में जम्बूद्वीप है, जिस जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। यह जम्बूद्वीप चूड़ी के आकार नहीं है, किंतु थाली के आकार है। यह तो सबके मध्य में है ना इसलिए थाली के आकार है। उस जम्बूद्वीप के ठीक बीच में मेरुपर्वत है, इसी कारण जम्बूद्वीप को मेरुनाभि कहा गया है याने मेरु है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाभि में जिसके, ऐसा जम्बूद्वीप और यह गोल है। अच्छा, जम्बूद्वीप को बताया गया है कि सबके बीच में जम्बूद्वीप है। साक्षात तो लवण समुद्र के बीच में है जम्बूद्वीप, मगर जब सब द्वीप समुद्र पूर्व-पूर्व से घिरे हुए हैं तो उसमें यह भी कह सकते कि समस्त द्वीप समुद्रों के बीच में जम्बूद्वीप है। तो जम्बूद्वीप का विस्तार कितना हुआ ? एक लाख योजन का। यह सूची विस्तार है, जिसे डाईमेटर कहते याने सीधा विस्तार। इसको परिधि अगर खोजी जाये कि यह आखिर कितना गोला है तो इसकी परिधि ३१६२२७ योजन है और उससे इतना और अधिक ३ कोश १२८ धनुष ९३, इसके अतिरिक्त आधा अंगुल और है और थोड़ा और अधिक है, इतना जम्बूद्वीप का परिधि क्षेत्र है। इस जम्बूद्वीप से भिड़ी हुई एक वेदिका है अथवा जगती कही गई है, जो आधा योजन की गहरी है, ८ योजन की ऊँची है और मूल में, मध्य में, अन्त में क्रम से १२ योजन, ८ योजन और ४ योजन की मोटी है, वज्रमय है, वैडूर्यमणि से रचित है, जिसके बीच में सभी रत्न पड़े हुए हैं। ऐसी वेदिका है जिसके चारों दिशाओं में चार बड़े द्वार हैं, जिनका नाम विजय, वैजन्त, जयन्त और अपराजित हैं। इन द्वारों का परस्पर में कितना अन्तर है ? विजय और वैजयन्त का अन्तर ७९०५२ योजन तथा आधा योजन तथा पाव योजन और आधा कोश, कोश का चतुर्थ भाग ३२ धनुष तीन अंगुल और एक अंगुल का चौथा भाग और इसके अतिरिक्त कुछ अधिक आधे अंगुल का चौथा भाग इतना अन्तर है एक द्वार से दूसरे द्वार के बीच में। ऐसी उस सुन्दर रमणीक वेदिका के बीच जम्बूद्वीप की समस्त रचना है। जम्बूद्वीप समस्त द्वीप समुद्रों में एक बड़ी महिमा के साथ गाया जाता है। ज्योतिष मंडल जितना है वह सब इस जम्बूद्वीप में रहने वाले सुदर्शन मेरु की परिक्रमा देते हैं, आदिकविशेषताओं के कारण जम्बूद्वीप एक अधिक महनीय द्वीप विशेष हैं।

मोक्ष शास्त्र नाम की सार्थकता—इस ग्रन्थ का नाम है तत्त्वार्थ सूत्र। इसका दूसरा नाम है मोक्षशास्त्र। जिसे बड़ी श्रद्धा से लोग पढ़ते हैं, प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को प्राय: करके महिलाएं पाठ करती हैं। दश लक्षण के दस दिनों में जिसका प्रतिदिन पाठ होता है। एक-एक दिन में एक-एक अध्याय का अर्थ होता है, यह है वह तत्त्वार्थ सूत्र। इसका नाम तत्त्वार्थसूत्र क्यों है कि तत्त्व सहित अर्थ का जिसमें वर्णन है, इसलिए इसका नाम है तत्त्वार्थसूत्र। इसका नाम मोक्ष शास्त्र क्यों है ? संसार में रुलने वाले जीवों को संसार के दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय इस ग्रंथ में बताया है, इस इस कारण इसका नाम है मोक्षशास्त्र। सबसे पहले सूत्र क्या है ? सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणिमोक्ष-मार्ग:, अर्थात सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये संसार ये दुःखों से छूटने के उपाय हैं। इसे बताया जा रहा है इस सूत्र द्वारा संसारी जीवों को। उनको दुःख का पता है इसलिये दुःख कैसे मिलता उसका निदान क्या है इस बात को पहले नहीं कहा। दूसरी बात यह है कि पहले अगर दुःख की बात कह देते तो ये संसारी जीव पहले से ही घबड़ा जाते, दुःख की बात सुनना कोई पसंद नहीं करता। तो उस दुःख के विस्तार की बात पहले नहीं कही, किंतु सीधा मोक्ष का उपाय क्या है यह बात कही। कोई थोड़ा आराम मिले, थोड़ा विश्वास मिले, थोड़ी सुबुद्धि की बात कही जाये। पीछे बतायेंगे कि दुःख क्या है। यों ही पहले-पहले मोक्ष मार्ग की बात कही।

सम्यक् प्रकाश—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ही मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन मायने उसका एक निष्पक्ष रूप लक्षण कि अपने आत्मा का जैसा अपने आप सहज स्वरूप है, स्वभाव है, याने जो मैं स्वयं अपने आप पर सम्बन्ध बिना अपने आप जो कुछ हो सकता हूँ, जो मेरा स्वरूप है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो स्वभाव है उस रूप अपना विश्वास करना उसे कहते हैं सम्यग्दर्शन। यह सम्यग्दर्शन क्या है? यह एक अमृततत्त्व है। यह ही बात अगर किसी में आ जाये कि मैं एक ज्ञान मात्र तत्त्व हूँ, एक सहज चैतन्यस्वरूप हूँ और इसके प्रतिपक्ष में जितनी बातें हैं वे सब एकदम हटें, श्रद्धा में न रहें, जैसे मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, व्यापारी हूँ, पंडित हूँ, मैं सुखी दुःखी, मैं रंक राव, मेरा गृह धन, गोधन, प्रभाव, ये आत्मा न जचें आखिर जीव यह अपना परिचय ही तो बना रहा है। सो अनात्मत्व की ये बातें न रहें केवल यह रहे कि मैं सारे जग से निराला, देह से भी निराला ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। यह बात श्रद्धा में आये यही है सम्यक्त्व का परिचय। इतनी सी बातें पाये बिना इस जगत में रुलना हो रहा है। एक अपने स्वभाव के परिचय के बिना संसार में रुलना हो रहा है। तो यह अन्तस्तत्त्व के दर्शन की बात किये जाओ। बस यही सार बात है और बाकी तो सब सांसारिक खेल की बातें पुण्य पाप के अनुसार बातें होती हैं। उसमें बुद्धि न रखना चाहिये कि मैं करने वाला हूँ, मैं ऐसा हूँ, यह मेरा है। ये बाहरी बातें हैं, ये जीव को अंधेरे में रखती हैं। जीव को अंधेरे से हटाकर उजेले में पहुँचे इसके लिये मूल मन्त्र यही है कि अपना जैसा सहज स्वभाव है, स्वरूप है उस रूप अपनी श्रद्धा करे। हालत हो रही है इतनी सब कुछ, लेकिन यह क्यों हो रही है? तो यह कर्म उपाधि का सम्बन्ध है। निमित्त नैमित्तिक योगवश हो रहा हो है। पदार्थ सब अपने-अपने में परिणमते हैं मगर जब भी विकार अवस्था होती है तो यह पर सन्निधान बिना नहीं हो रही है।

सम्यग्ज्ञान की कला का लक्ष्य अन्तस्तत्त्व—हो रही है विभाव की इतनी सारी गड़बड़ पर गड़बड़ होने पर भी हमारे ज्ञान में ऐसी कला है, ऐसी महिमा है कि हम उस गड़बड़ को उपयोग में न लें और अन्तःप्रकाशमान जो आत्मा का सहज स्वरूप है उसको ज्ञान में लें, आत्मानुभूति का यही उपाय है, उस गड़बड़ को ध्यान में न लें। गड़बड़ नहीं है यह बात नहीं कह रहे। सबके होती है। हम मनुष्य भव में हैं, इसको मना नहीं किया जा रहा, पर ज्ञान में एक ऐसी कला है कि वह इस अवस्था को अपने उपयोग में न ले और अपना जो एक सहज स्वरूप है उसको ज्ञान में लें। यद्यपि यह बात कठिन है लेकिन सम्भव है। ज्ञान के उपयोग की ही तो बात है। जब हम यह देखते हैं कि ज्ञान में किसी को बसा लेते हैं, उसकी धुन हो जाती है तो हमें यह ध्यान में नहीं रहता कि हमारा कौन है, क्या है? बहुत सी बात ध्यान में नहीं रहती। जैसे एक दृष्टांत लो। मानो आप अपने कमरे में बैठे हैं। आँगन में गेहूँ फैले हैं सूखने के लिए, क्यों कि मानों कल उन्हें पीसना है। अचानक तेज बारिस आ गई तो आप उन्हें उठाने के लिए झट दौड़ते हैं। मान लो आप के कमरे का दरवाजा था नीचा। और उस तेजी से दौड़ते हुए में दरवाजे का चौखट आप के सिर में लग जाए, सिर में खून भी आ जाए फिर भी आप को उसका पता नहीं पड़ता। क्यों पता नहीं पड़ता? इसलिए कि आपका ज्ञान उन गेहूँओं में गड़ गया। आप का उपयोग उन गेहूँओं की तरफ लग गया, सिर की तरफ नहीं रहा, इससे उसकी खबर नहीं रहती। ठीक इसी तरह यह ज्ञान जब आत्म स्वभाव की ओर गड़ जाता है तो वहाँ फिर इस शरीर तक का भी भान नहीं रहता। मैं एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानमात्र हूँ, बस इसी की तो साधना करना है। इसी के सहारे अच्छा ध्यान बनेगा, भव-भव के कर्म कटेंगे। इसके साथ संयम है तो संयम है और आत्मज्ञान बिना जो संयम है वह एक प्रकार का परिचय तो है मगर वह सम्यक्चारित्र नहीं। अब जाना अपने आप को कैसा अनुभव करना। सबसे बड़ा बाधक है तो भीतर में जो अहंभाव बसा है वह बाधक है। वह कैसे निकले? पर्याय में अहंभाव पड़ा है। जब तक पर्याय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में अहंभाव लेशमात्र भी रहता है तब तक यह जीव ज्ञान में नहीं है। यह अहंभाव कैसे मिटे ? इसके मिटाने की तरकीब क्या है ? क्या ढेला पत्थर मार कर मिटाया जायेगा ? नहीं ! अरे इसके मिटाने की तरकीब यही है कि वस्तु के स्वरूप का सही परिचय करना है। जैसा कि वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से है उस तरह से निरखना है। इस तरह के निरखने में बड़ी समझ के बाद भेदविज्ञान जागता है। प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न है। फिर भेद विज्ञान जगने से यह फल मिलेगा कि अनात्म तत्त्वों से यह उपेक्षा कर देगा। और फिर अपने जो आत्मा का वास्तविक रूप है उस रूप अपने को मानेगा, अनुभवेगा, बस यह जो वृत्ति है, यह जो उपाय है, यह हो संसार के दुःखों से छुटकारा पाने का एक उपाय है। यही है सम्यग्दर्शन। इसके पाने के लिए यों समझिये कि इज्जत पोजीशन धन जिसके कारण इसका नये-नये ढंग से व्यवहार चलता है। अहंकार, ममकार —ये मेरे हैं, कुटुम्ब के नाते जगते, ये मेरे हैं, दूसरे के हैं, या अपनी मित्रता के नाते से जगते, ये मेरे हैं ये गैर हैं। तो कभी ज्ञान के नाते से भी तो देखो। जैसा हम बोलें वैसा माने तो वह मेरा और जैसा हम बतायें वैसा न माने तो वह गैर। याने इस मिथ्यात्व की, इस मोह की कितनी गहरी जड़ बना रखी है, इसके निकले बिना कोई चाहे कि हमारा उद्धार हो जाये तो नहीं हो सकता।

आत्मानुभवन के पौरुष में अनात्मतत्त्व के परिहरण व अन्तस्तत्त्व में स्वानुभवन के उद्यम— आत्मानुभव कैसे बने, इसके लिये सारी इज्जत पोजीशन खाक में मिलानी होगी। एक बालकवत सरल बनना होगा। अहंभाव न रहे ऐसी वृत्ति बने तो उसे आत्मा के निकट पहुँचने का अवसर है। अनन्त काल के लिए संसार के सारे दुःखों से छूट जाने की बात महान है, पर ऐसे महान लाभ के लिए कितना बलिदान हमको करना चाहिये। जो मान रखा है अनात्मतत्त्व रूप को अपना-अपना वह सारा का सारा बलिदान करना होगा तब उस महान तत्त्व का लाभ होगा। छोटी-छोटी बातों के लिए तो बड़े सुभट बने हैं, बड़े समझदार, हठवान नाना प्रकार की बातें मगर एक अन्तः स्वरूप के जानने के लिये, इसके परिचय के लिये, अनुभव के लिये कैसा पौरुष करना चाहिये उसके लिये बुद्धि नहीं जगती। बाहरी-बाहरी बातों के लिए तो बुद्धि बहुत जगती। तो मोक्ष का उपाय पाने के लिए कितना भेद विज्ञान का हमें काम पड़ा है। जब कोई इसके निकट आता है वह समझ पाता कि अभी हम कितना पीछे हैं ? किस पद में हैं, किस जगह हैं अभी हमें कितना उठना है ? कितना जाना है। तो एक आत्मा के सहज स्वभाव को किस रूप में अनुभव करना ? मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान ही ज्ञान हूँ, देखो पर्याय की बात यहाँ अभी ज्ञान में नहीं लेना। पर्याय बिना कुछ रहता नहीं। जो है सो है, मगर यहाँ अपने को स्वभाव रूप में परखे कि मैं कैसा हूँ। जैसा स्वभाव है अन्तः प्रकाशमान है उस रूप अपने को निरखें कि मैं यह हूँ, और जो गुजर रही है, जो परिस्थिति है, जो बीत रही है उस रूप अपने को कबूल न करें। परतत्त्व है, मगर उसे आत्मा रूप न मानें। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जब यह देखें तो यह ध्यान में आएगा कि मेरे स्वरूप में किसी अन्य का प्रवेश नहीं है, किसी भी पदार्थ के स्वरूप में किसी दूसरे का प्रवेश नहीं है, नहीं तो वह चीज ही बिगड़ जाये। स्वरूप सबका अपना एक है, जब अपने को स्वरूप रूप मान लिया, देखो कुछ जबरदस्ती मान ले, फिर कुछ सहज मानने में आएगा। एकीभाव स्तोत्र में तो यह कहा कि हे प्रभो ! आपका ज्ञान करते-हमें ऐसा लगता कि एकदम हम तो आप में समा गये, इस प्रकार का जब ध्यान बनता है तो एक अद्भुत तृप्ति उत्पन्न होती है। इससे यहाँ निर्णय करें कि स्वरूप साम्य में लगा हुआ ध्यान जब कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तृप्ति देता है तो यदि ऐसा अनुभव बनाया जा सके कि मैं अपने स्वरूप में तन्मय ज्ञानमात्र हूँ तो क्या अपने में अनुभव नहीं किया जा सकता ? निज में अपना ज्ञान न पहुँचा सकूं यह कैसे हो सकता ? मैं तो ज्ञानमात्र हूँ।

सम्यक्त्व लाभ के लिये उचित मनन—मेरे स्वरूप में किसी अन्य का प्रवेश नहीं। जब अन्य का प्रवेश नहीं और स्वरूप ही स्वरूप देख रहे हैं तो मुझे भार क्या ? जब इस दृष्टि में लग रहे हैं तो स्वरूप में भार नहीं। स्वरूप अपना है। यह अपने आपके परिचय की बात है। मैं ज्ञानघन हूँ। घन कहते हैं वही वही, उसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं। मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं, याने मेरी जो सत्ता बनी है तो ऐसा नहीं कि मैं आधा बना, आधा अभी नहीं बना। आधा तो कोई चीज होती ही नहीं। लोग कहते कि अभी हमारा मकान आधा बना है पर जितने परमाणु हैं वे सब पूरे हैं, अधूरा कुछ नहीं हुआ करता। जो चीज अधूरी है वह कुछ है ही नहीं। तो जब अपने आपके स्वरूप को देखा कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ तो वहाँ यह दृष्टि होगी कि मैं अपूर्ण नहीं। स्वरूप की बात कह रहे हैं, परिणति की बात नहीं कह रहे। जैसे कोई मकान बना रहा तो वह मकान को दृष्टि में रखकर कहेगा कि अभी हमारा मकान अधूरा पड़ा है, पर वस्तुओं को दृष्टि में रखकर देखें तो अधूरा कुछ नहीं हुआ करता। तो ऐसे ही हम संसार में हैं और हमें मोक्ष चाहिये। हमको उपाय बनाना है, ऐसी दृष्टि रखेंगे तो अधूरा लगेगा कि हमें तो अभी बहुत काम करने को पड़ा है, मगर यहाँ तो स्वरूप की निगाह से बोल रहे हैं। मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं अतः मैं कृतार्थ हूँ। मेरे करने को क्या रहा ? जब मेरी सत्ता में कमी हो तो पूरा नहीं बन पाया तो कुछ करना चाहिये जिससे कि पूरा हो जाऊँ। स्वरूप की बात कह रहे हैं ऐसा तो है नहीं। स्वरूप परिपूर्ण है इसीलिये कृतार्थ हूँ। मैं सहज आनन्द स्वरूप हूँ। स्वरूप को देखो—स्वरूप में कष्ट कहाँ पड़ा ? स्वरूप ज्ञानरूप है। ज्ञान ज्ञानरूप वर्तता रहता है। स्वरूप की बात। उसमें कष्ट का कहाँ नाम है ? स्वभाव से कहाँ कष्ट आता है ? औपाधिक भाव की बात गुजर रही है उसे नजर में न लें। स्वरूप को देखना। मेरे में कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं। स्वरूप की बात है, ऐसी भीतर में अपने आपके स्वरूप में दृष्टि रहे बस यही सम्यक्त्व लाभ का उपाय है।

भरत हैमवत हरिविदेह रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्रों में प्रथम क्षेत्र भरत क्षेत्र का परिचय— इस जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप एक गोल घेरे वाला है जैसा कि ऊपर के सूत्र में कहा गया है और उसमें बीच में ६ बड़े पर्वत पड़े हुये हैं जिनका नाम है कुलाचल। तो उन ६ पर्वतों के कारण उस गोल जम्बूद्वीप के ७ भाग हो जाते हैं, जिसमें दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर तक इस प्रकार के नाम हैं—भरत, हैमवत, हरि विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। यहां पहले भरत क्षेत्र का कुछ वर्णन किया जा रहा है। प्रथम यही जिज्ञासा होगी कि इस क्षेत्र का नाम भरत क्यों रखा गया। तो भरत जो नाम रखा है तो मुख्य उत्तर तो यह है कि यह एक अनादि से प्रसिद्ध रुढ़ नाम चला आया है, पर इस युग में जिसके कारण उसकी प्रसिद्धि हुई है उसका कारण यह है कि यहाँ कर्मभूमि की आदि में चक्रवर्ती राजा भरत हुये थे जो प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव के पुत्र थे। तो उन क्षत्रिय भरत चक्रवर्ती के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम भरत पड़ा है। इस भरत क्षेत्र में जो कि पहले कुलाचल हिमवान पर्वत और जम्बूद्वीप की वेदियों के बीच में है विजयार्द्ध पर्वत है, और हिमवान पर्वत से गंगा और सिंधु ये दो नदियां निकली

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, जिस कारण से भरत क्षेत्र के ६ खण्ड हो जाते हैं। जिनमें मुख्य खण्ड तो आर्य खण्ड है, शेष ५ म्लेच्छ खण्ड हैं। इस आर्य खण्ड में एक विनीता अथवा अयोध्या नाम की नगरी है, जिसका विस्तार १२ योजन लम्बा, ९ योजन चौड़ा है। उस नगरी में प्रथम तीर्थंकर आदि देव हुये और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए। ये ६ खण्ड के अधिपति थे। जो तीन खण्ड के अधिपति होते हैं वे नारायण कहलाते हैं और जो ६ खण्ड का अधिपति होता है वह चक्रवर्ती होता है। तो अवसर्पिणी काल में याने इस कलियुग के प्रारम्भ में कर्म भूमि के आदि में जब राज्यों का विभाग बना और राजाओं का विधान बना उस समय में सबसे प्रथम राज्य भार भरत चक्रवर्ती का था, ऐसे उस समय के प्रधान चक्रवर्ती भरत के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र हुआ। यह भरत क्षेत्र हिमवान पर्वत और तीनों ओर समुद्र है, इनके बीच में है और गंगा, सिंधु नदी के कारण एवं विजयार्द्ध बीच में होने के कारण यह क्षेत्र ६ भागों में विभक्त हो गया है।

विजयार्ध नाम की सार्थकता के वर्णन के साथ विजयार्धगिरि का परिचय—अब इस क्षेत्र के बीच में जो विजयार्द्ध पर्वत है उसका नाम विजयार्द्ध क्यों रखा गया ? क्यों प्रसिद्ध हुआ ? इसका कारण सुनिये। कारण यह है कि चक्रवर्ती जब एक ओर से तीन खण्ड का विजय प्राप्त कर लेता है तब आधी विजय मानी जाती है, और इस पर्वत के दूसरी तरफ के रहने वाले ३ खण्डों पर विजय पा लेता है तो वह चक्रवर्ती कहलाता है। तो यह पर्वत आधी विजय, पूरी विजय इनके विभाग से बना है इस कारण इस पर्वत का नाम विजयार्द्ध पर्वत है। यह विजयार्द्ध पर्वत एक चाँदी जैसी धातु का पर्वत है, इसका विस्तार ५० योजन है, ऊँचाई २५ योजन और अवगाह मायने जमीन के नीचे, यह एक कोश अधिक ६ योजन है। यह विजयार्द्ध पर्वत पूर्व की ओर समुद्र को छुवे हुए है और पश्चिम की ओर भी समुद्र को छुवे हुये है याने जम्बूद्वीप के चारों ओर लवण समुद्र है। तो यह छहों कुलाचल और विजयार्द्ध ये लवण समुद्र के दोनों कोरों को छुये हुए हैं। जिनमें विजयार्द्ध पर्वत तो कुछ समुद्र की तरफ भी बढ़ा हुआ है जिस पर कुभोगभूमियों की रचनायें हैं। भरत क्षेत्र के अन्दर पूरब पश्चिम तक लम्बा जो विजयार्द्ध पर्वत पड़ा हुआ है सो उसके दोनों कोरों में चूंकि उत्तर दक्षिण में कमती बढ़ती है, उत्तर की ओर की लम्बाई अधिक है और दक्षिण की ओर की लम्बाई कम है। तो इस स्थिति में दोनों किनारों पर उसकी बाहू बन जाती है तो पूरब और पश्चिम के किनारे पर विजयार्द्ध की बाहू ४८० योजन और १६/१९ भाग तथा कुछ अधिक आधा योजन इतने विस्तार वाला है। यह विजयार्द्ध का वर्णन इस प्रयोजन से किया रहा था ताकि चक्रवर्ती के दिग्विजय की बात विशेषतया मालूम हो सके कि वह किस तरह से विजयार्द्ध को गुफाओं में से पार करके ६ खण्ड पर विजय प्राप्त करता है।

विजयार्ध पर्वत व उसकी गुफाओं का संक्षिप्त परिचय—इस विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर किनारे की डोरी १०७२० योजन तथा १२/१९ भाग तथा कुछ अधिक है। इस डोरी के मायने यह है कि जब एक गोल जम्बूद्वीप में दक्षिण की ओर जरा से हिस्से में विजयार्द्ध पर्वत पड़ा है तो उसका आकार अब धनुष की तरह बन गया। मानो विजयार्द्ध पर्वत तो डोरी की तरह सीधा लम्बा है और उस किनारे के जो जम्बूद्वीप की वेदिका है वह एक धनुष का बांस बन गया। तो इस तरह धनुषाकार हो जाने से विजयार्द्ध पर्वत को एक डोरी का रूप बताया है। तो चूंकि विजयार्द्ध के उत्तर की तरफ लम्बाई अधिक है इसलिये उसकी डोरी अधिक विस्तार की है और फिर उस डोरी को छुए हुए धनुष की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पीठ १०४७३ योजन तथा १५/१९ भाग है और जरा सा अधिक है। अब विजयार्द्ध के दक्षिण तरफ की डोरी का विस्तार सुनो। यह डोरी उत्तर की डोरी से कम है, यह है, ९७४८ योजन तथा एकयोजन का १२वाँ भाग एवं थोड़ा और अधिक है। इस डोरी के धनुष का पीठ ९७६७ योजन तथा कुछ अधिक है। इस विजयार्द्ध पर्वत के दोनों किनारों पर उत्तर दक्षिण में दोनों ही किनारों पर पूरब पश्चिम की ओर लम्बे वन खण्ड हैं, जो वन खण्ड सर्व ऋतु के उत्पन्न हुए फल और फूल और उत्तम वृक्षों से सहित हैं, वे वनखण्ड बेदियों से घिरे हुए हैं, जिनकी लम्बाई विजयार्द्ध पर्वत के बराबर है और चौड़ाई आधा योजन है। इस तरह सुन्दर वनखण्ड उस विजयार्द्ध पर्वत के दोनों ओर हैं। इस पर्वत में से दो गुफायें आर की पार हुई हैं जिन गुफाओं में से चक्रवर्ती विजय करने के लिए निकलता है इन गुफाओं के नाम हैं—तमिश्रखण्ड और प्रपात, विजयार्द्ध पर्वत जितना चौड़ा है उतनी ही लम्बी ये गुफायें हैं याने उत्तर दक्षिण की ओर ५० योजन लम्बी गुफायें हैं और पूरब पश्चिम की ओर १२ योजन की चौड़ी गुफायें हैं और इनकी ऊँचाई ८ योजन की है। उत्तर और दक्षिण दोनों ओर दो दरवाजे हैं जिन पर वज्रमय कपाट लगे हैं, जिन कपाटों को चक्रवर्ती निधि रत्नों के प्रयोग से खोलता है और खोलने पर इतनी गरम विषैली हवा निकलती है कि चक्रवर्ती को मय सेना के कुछ काल तक बाहर ही रुकना पड़ता है, जब गुफाओं का वातावरण शुद्ध हो जाता है तब चक्रवर्ती मय सेना के उन गुफाओं में से निकलता है। इन गुफाओं के वज्रमय कपाट ६ १/४ (सवा छह) योजन के चौड़े हैं। एक कोश के मोटे और ८ कोश के ऊँचे हैं। इन गुफाओं में से गंगा और सिंधु नदियाँ निकली हैं जो हिमवान पर्वत से गिरी हैं और इन गुफाओं से निकलकर लवण समुद्र में जाकर गिरी हैं। ये गंगा और सिंधु नदी बहुत बड़े विस्तार वाली हैं और इनका नाम जोसार्थक है वह यह है कि गंगा को तो कहते हैं उन्मग्नजला अर्थात इस नदी के जल के कोई एक तृण पत्ता आदिक कुछ भी डाला जाय तो वह ऊपर को फिका हुआ सा डोलता है और सिंधु नदी को कहते हैं निमग्नजला, इसमें तृण आदिक कुछ भी डाला जाये तो वह भीतर को ओर प्रवेश करता है। इस तरह यह विजयार्द्ध पर्वत कहा गया है।

विजयार्ध पर्वत के ऊपर की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय—विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर क्या-क्या रचनायें हैं उसकी भी थोड़ी जानकारी करें। इस विजयार्द्ध पर्वत पर पृथ्वी तल से १० योजन ऊँचे दोनों किनारों पर १० योजन के विस्तार वाला एक कटाव है, जो पर्वत के बराबर लम्बा चला गया है। उन दोनों कटावों पर विद्याधर रहा करते हैं तब उत्तर तरफ के कटाव पर विद्याधरों की श्रेणियां हैं जहाँ पर विद्याधरों के ६० नगर हैं और दक्षिण तरफ के कटाव पर विद्याधरों के ५० नगर हैं। इन नगरों में विद्याधर जो रहते हैं वे कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए मनुष्यों की भांति हैं और वे खेती वाणिज्य आदिक षट्कर्मों से ही अपनी आजीविका करते हैं। सिर्फ विशेषता यह है कि उन विद्याधरों में मौलिक विद्यायें चली जाती हैं प्रज्ञप्ति आदिक विद्याओं के वे धारी होते हैं, तो विद्याधरों के नगर ऊपर १० योजन और चल कर दो कटाव और हो जाते हैं। जो १० योजन के विस्तार वाले हैं। पर्वत के समान जिनकीलम्बाई है, इस भाग पर व्यन्तरदेव रहते हैं, और उन व्यन्तरों श्रेणियों में इन्द्र, लोकपाल, सोम, यम, वरुण, वैश्रण और आभियोग्य, व्यन्तर देवों के निवास हैं। इससे और ५ योजन ऊपर चलकर शिखर तक आ जाते हैं, जिस पर ९ कूट हैं, जिनमें पूरब दिशा में जो कूट है वह सिद्धायतन कूट है, उसके ऊपर एक अकृत्रिम जिन मन्दिर बना हुआ है, जिसके द्वार पूरब उत्तर और दक्षिण में हैं और उसके बाद पश्चिम की ओर ८ कूट हैं जो जिन मन्दिर की तरह के ही लम्बे चौड़े हैं, उनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशिष्ट जाति के देवों का निवास रहता है। जहाँ जिन मन्दिर है उस कूट का नाम है सिद्धायतन कूट और ये जो ८ कूट हैं इनका नाम है दक्षिणार्द्धभरत कूट, खण्डकप्रपात कूट, माणिकभद्र कूट, विजयार्द्ध कूट, पूर्णभद्र कूट, तमिश्रागुहा कूट, उत्तरार्द्ध भरत कूट और वैश्रवण कूट। इन कूटों पर जिन देवों के निवास हैं वे हैं क्रमशः दक्षिणार्द्ध भाग देव, वृजमाल्य देव, मणिभद्र देव, विजयार्द्ध गिरिकुमार देव, पूर्णभद्र देव, कृतमाल देव उत्तरार्द्ध भरत देव और वैश्रवण देव। इन सब कूटों के होने से जो विजयार्द्ध पर्वत की ऐसी अनुपम शोभा हो जाती है कि जैसे मानों वह पर्वत का राजा हो, ऐसे इस विजयार्द्ध पर्वत से भरत क्षेत्र के दो भाग हो जाते हैं और गंगा, सिधु नदी के कारण ६ खण्ड हो जाते हैं। इन ६ खण्डों पर विजय प्राप्त की थी, इस कर्मभूमि की आदि में भरत चक्रवर्ती ने जिसके नाम इस क्षेत्र का नाम प्रसिद्ध हुआ है भरत क्षेत्र।

जम्बूद्वीपस्थ हैमवत क्षेत्र का परिचय—भरतक्षेत्र के बाद उत्तर की ओर हैमवत नाम का दूसरा क्षेत्र है। इस क्षेत्र का नाम हैमवत क्यों पड़ा कि यह क्षेत्र हिमवान पर्वत से लगा हुआ है याने हिमवान पर्वत से दक्षिण की तरफ तो भरत क्षेत्र है और उत्तर की तरफ हैमवत क्षेत्र है। तो हिमवान पर्वत के निकट होने से इस क्षेत्र का नाम हैमवत क्षेत्र पड़ा है और यह क्षेत्र हिमवान और महा हिमवान इन दो पर्वतों के बीच में है, याने हैमवत क्षेत्र के उत्तर की तरफ महाहिमवान पर्वत है। सो हिमवान महाहिमवान इन दोनों पर्वतों के बीच हैमवत क्षेत्र है जो बराबर पूरब और पश्चिम में इतने लम्बे चले गये हैं कि जहां तक समुद्र मिलता है। इस हैमवत क्षेत्र के बीच में एक गोल पर्वत है जिसका नाम है शब्दवान। यह पर्वत १००० योजन का ऊँचा है, २५० योजन का गहरा है याने नीचे जमीन में है और ऊँचाई में, नीचे में, बीच में सब जगह एक समान विस्तार वाला है। उसके बीच में तल भाग पर, स्वाती देवों के विहार करने का स्थान है।

जम्बूद्वीपस्थ हरिवर्ष क्षेत्र का परिचय—हैमवत क्षेत्र के बाद उत्तर में हरिवर्ष नाम का तृतीय क्षेत्र है। जो क्षेत्र निषध और महाहिमवान इन दो पर्वतों के बीच में है। अर्थात हरिवर्ष नाम के क्षेत्र से उत्तर की ओर निषध पर्वत आता है। इस क्षेत्र का नाम हरिवर्ष इस कारण पड़ा कि हरि नाम है सिंह का। जैसे सिंह श्वेत होता है उसी रंग के यहाँ मनुष्य होते हैं। ये मनुष्य स्थिर भोगभूमि में रहते हैं अर्थात यह जो भोग भूमि है वह सदैव रहती है। हैमवत क्षेत्र भी भोगभूमि में था। इस हरिवर्ष क्षेत्र के बीच में एक गोलाकार पर्वत पड़ा है, जिसका नाम है विकृतवान। इसकी ऊँचाई वगैरह शब्दवान पर्वत की तरह है। इस पर्वत के ऊपर अरुणदेव का विहार स्थान है। इस क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि बताई गई है। जैसे कि भरत क्षेत्र में जब दूसरा काल आता है उस समय जो मनुष्य तिर्यंचों के स्थान होते हैं वैसे स्थान इस भोगभूमि में सदा काल रहा करते हैं।

विदेह क्षेत्र की अन्वर्थता—जम्बूद्वीप के बीचो बीच विदेह क्षेत्र है। यह विदेह क्षेत्र निषध पर्वत से उत्तर में है और नील पर्वत से दक्षिण में है अर्थात विदेह क्षेत्र से ऐरावत क्षेत्र की ओर नील है, भरत क्षेत्र की ओर निषध है और पूर्व पश्चिम में समुद्र है। इस बीच महान विस्तार वाला यह विदेह क्षेत्र है। इसको विदेह क्यों कहते हैं ? तो विदेह का अर्थ है देहरहित। जिस क्षेत्र से मुनिजन सदैव देहरहित होते रहते हैं' मुक्ति पाते हैं उस क्षेत्र का नाम विदेह है। विदेह के सम्बन्ध से उस देश का भी नाम विदेह पड़ गया। जिसके देह नहीं हैं अथवा कर्मबन्ध की सन्तान के विनाश के लिये देह होने पर भी जो देह में शरीर संस्कार नहीं करते हैं ऐसे भव्य पुरुष विदेह कहलाते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ मुनिजन मोक्षमार्ग में प्रयत्न करते हुए मुक्ति को प्राप्त करते रहते हैं इस कारण इस क्षेत्र को विदेह कहते हैं। यहां कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र से भी तो मुनि विदेह हो जाते हैं, मुक्ति प्राप्त करते हैं, देह के संस्कार नहीं करते, विरक्त रहते। फिर इस ही का नाम विदेह क्यों रखा गया? इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि भले ही भरत क्षेत्र में और ऐरावत क्षेत्र में भी मुनिजन मोक्ष प्राप्त करते हैं किंतु हमेशा नहीं कर सकते। भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का चक्र चलता है। तो जब-जब चतुर्थ काल आता है तब-तब यहाँ मुक्ति प्राप्त होती है। किंतु विदेह क्षेत्र में तो सदा धर्म का मोक्ष के मार्ग का सद्भाव है। धर्म का विनाश कभी नहीं है ऐसी उत्कृष्टता की अपेक्षा विदेह वास्तव में वहाँ है, इसीलिए विदेह ज्ञज्ञा उस क्षेत्र में रखी गई है।

विदेह क्षेत्र के दिशाओं की अपेक्षा से चार विभाग—जम्बूद्वीप एक गोलाकार है और एक लाख योजन की सूची वाला है। उसमें भरत, हैमवत, हरिक्षेत्र के बाद विदेह क्षेत्र आया है, जिसका विस्तार बहुत अधिक है। जैसे बताया था कि एक लाख योजन के १९० भाग करना, अब उनमें से जैसे एक भाग भरत क्षेत्र है। दो भाग हिमवान पर्वत है तो ऐसे ही विदेह क्षेत्र ६४ भाग प्रमाण है। वह विदेह जिसके बीच में मेरु पर्वत है उसके ४ भाग हो जाते हैं। दिशाओं की अपेक्षा पूर्वविदेह, दक्षिण-विदेह, पश्चिम विदेह, उत्तर विदेह। पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह तो कर्म भूमि हैं वहाँ से मुनियों की मुक्ति सतत होती रहती है पर दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह का जो थोड़ा भाग है, जो गजदंत पर्वतों से घिरा है उस भाग में उत्कृष्ट भोगभूमि है वहाँ संयम नहीं, वहाँ से मुक्ति नहीं। यहाँ एक आशंका की जा सकती है कि ऐसा कहना कि मेरु के पूर्व में पूर्व विदेह है। पश्चिम में पश्चिम विदेह है। दक्षिण उत्तर के भी विदेह हैं। यह कहना कुछ व्यवस्थित नहीं बनता। कारण यह कि सूर्योदय जहाँसे होता है उसे पूर्व कहते हैं। तो जिस समय सूर्य निषध पर्वत से उग रहा है तो पश्चिम विदेह वाले को पश्चिम विदेह का पूर्वार्द्ध पूर्व बन गया। जब सूर्य नील कुलाचल से उगा करता है कहीं नील से उदय हुआ तो पूर्व विदेह का उत्तरार्द्ध पश्चिम बन गया। कभी एक भाग में गजदन्त के निकट निषध से उदय हुआ तो पूर्व, पश्चिम दिशा नहीं बन पाती है। देखो कि पूर्व विदेह में सूर्य नील पर्वत से उगता है और निषध पर्वत पर अस्त को प्राप्त होता है। तो इस प्रक्रिया से अब पूर्व में नील हुआ, पश्चिम में निषध हुआ और समुद्र दक्षिण में हुआ। मेरु उत्तर में हुआ और इसी प्रकार जब पश्चिम विदेह की बात देखते हैं तो वहां निषध पर्वत पर उदय होता है और नील पर्वत पर अस्त होता है। तो वहाँ पूर्व में तो निषध कहलाया, पश्चिम में नील कहलाया और दक्षिण में समुद्र हुआ और उत्तर में मेरु हुआ। इस प्रकार उत्तर विदेह और दक्षिण विदेह वह नहीं भी निश्चित दिशा में बनता, क्योंकि उत्तर कुरु में गंधमादन नाम के पर्वत से उदय हुआ और माल्यवान पर्वत पर अस्त हुआ तो यहाँ गन्धमादन पूर्व में हुआ, माल्यवान पश्चिम में हुआ। नील दक्षिण में हुआ। मेरु उत्तर में हुआ। अब दक्षिणविदेह की और ही कथा सुनिये। देवकुरु में सौमनस पर्वत से उदय होता, विद्युत-प्रभ पर्वत पर अस्त होता। तो यहां सौमनस तो पूर्व में कहलाया, विद्युत्प्रभ पश्चिम में हुआ। निषध दक्षिण में, और मेरु उत्तर में हुआ तो यहां कोई दिशा सही न बन सकी दिशा की अपेक्षा कभी कुछ पूर्व में हुआ कभी कुछ पश्चिम में हुआ। तब फिर यह सिद्धांत कैसे सही उतरेगा कि विदेह के ऐसे चार दिशाओं के भाग हैं। इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि उस तरह सूर्योदय से हर जगह देखी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाए तो दिशा सही नहीं बनती यह बात ठीक है, किंतु यह वर्णन तो भरत क्षेत्र की अपेक्षा से किया है विदेह में बैठ कर दिग्विभाग यह नहीं बनाया जा रहा। इस भरत क्षेत्र में सूर्योदय और सूर्यास्त के नाते से दिशाओं का विभाग बनाया गया है, फिर उस विभाग के अनुसार देखेंगे तो मेरु पर्वत से ये सब दिशायें सही बन जाती हैं।

जम्बूद्वीपस्थ उत्तर कुरु नामक योग भूमि का कथन—विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में मेरु पर्वत है, उसके पश्चिमोत्तर दिशा में गंध मालिनी है। इस देश के समीप रहने वाले देवारण्य वन से पूर्व में गंधमादन नाम का वक्षार (गजदंत) पर्वत है जो उत्तर और दक्षिण दिशा में लम्बा है, पूर्व और पश्चिम दिशा में चौड़ा है जो अपने दक्षिण और उत्तर के कोने से मेरु और नील पर्वत को छू रहा है, जो दो बनखण्डों से सुशोभित है, मूल, मध्य व अग्र भाग में सर्वत्र स्वर्णमय है, नील पर्वत के निकट ४०० योजन का ऊंचा है, १०० योजन का गहरा है अर्थात् पृथ्वी के अन्दर है, ऐसा वक्षार पर्वत है। वह प्रदेश वृद्धि से बढ़-बढ़कर मेरू के निकट पांच सौ योजन ऊंचा व चौड़ा है तथा १२५ योजन गहरा है। फिर हीन होता जाता है और नील पर्वत के पास २५० योजन चौड़ा रहता है, जिसकी लम्बाई ३०६०२ योजन तथा ६/१६ भाग तथा कुछ अधिक है। उसके ऊपर मेरु के निकट १२५ योजन ऊंचा व चौड़ा एक सिद्धायतनकूट है, उसके उत्तर की ओर गंधमादन, उद्कुरु, गंधमालि, स्फरिक, लोहिताक्ष व आनंद नामक ६ कूट और हैं, जिसमें सिद्धायतनकूट में तो अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, और शेष ६ कूटों में से स्फटिक व लोहिताक्ष इन दो कूटों पर दो दिक्कुमारी (भोगधरी व भोगवती) देवियां रहती हैं उनके प्रास्तद हैं, शेष ४ कूटों पर देव निवास करते हैं। मेरु के उत्तर दिशा में पूर्व की ओर नील से दक्षिण की ओर कच्छ नाम के देश से पश्चिम की ओर माल्यवान नाम का वक्षार पर्वत (गजदंत) मिलता है उसके ऊपर भी मेरु के निकट एक सिद्धायतन कूट है, जिस पर जिनमन्दिर है, उसके उत्तर की ओर माल्यवत् उदक् कुरु कच्छ विजय सागर ६ कूट हैं जिनमें सागर व रजत २ कूटों पर सुभगा व भोग मालिनी दिग्कुमारियां निवास करती हैं। शेष ७ कूटों में देव निवास करते हैं। मेरु से उत्तर में, गंधमादन से पूर्व में, नील से दक्षिण में, माल्यवान से पश्चिम में, उत्तर कुरु है। ये सब भोग भूमियाँ चल रही हैं, जिनमें उत्कृष्ट भोग सामग्री है। तीन पल्य की आयु के मनुष्य व पशु पक्षी होते हैं। तीन दिन बाद थोड़ी क्षुधा होती है, क्षुद्र बेर प्रमाण आहार करते हैं, पुरुष और स्त्री इन दोनों का वियोग नहीं होता अर्थात् इनका एक साथ मरण होता है। ऐसे ही भोग सामग्री यहां ऐसी पायी जाती है जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में पहले काल में पायी जाती है, यहां मेरु से उत्तर की ओर गंधमादन से पूर्व नील पर्वत से दक्षिण और माल्यवान से पश्चिम में स्थित पूर्व-पश्चिम में लम्बी, दक्षिण-उत्तर में चौड़ी उत्तर कुरु नाम की उत्कृष्ट भोग भूमि है, जो बहुत वन खन्डों से सुशोभित है, जिसकी चौड़ाई ११८४२ योजन तथा २/१६ योजन देवकुरु की तरह है। उत्तर कुरु में दो यमक गिरि, पाँच सरोवर व एक सौ कांचन गिरि हैं। नील पर्वत के पास में उस क्षेत्र को डोरी ५३ हजार योजन है, चूंकि ये भोग भूमियाँ मेरु पर्वत की ओर तो सकरी हैं और नील या निषद पर्वत की ओर बहुत चौड़ी हैं और वहाँ दो पर्वत इस प्रकार पड़े हुए हैं कि जिससे उन भोग भूमियों का आकार धनुष की तरह हो जाता है। जब आकार धनुष की तरह हो गया तो एक ओर डोरी सी होगी। सामने धनुष का पृष्ठ सा होगा, अर्थात् इस भोग भूमि में डोरी तो ५३००० योजन है और धनुष पृष्ठ ६०४१८ योजन और १२/१६ तथा कुछ अधिक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जम्बू द्वीप के उत्तर कुरु नामक विदेह भाग में स्थित सपरिवार जम्बू वृक्ष का वर्णन—इस भोग भूमियों में विशिष्ट रचना क्या है कि सीता नदी के पूर्व दिशा में जम्बू वृक्ष पाया जाता है। यह जम्बू वृक्ष वनस्पति कायिक नहीं, पेड़ नहीं, किन्तु जम्बू वृक्ष के आकार अकृत्रिम एक पृथ्वी की रचना है, जिसका जमीन से तना निकला है, शाखायें फूटी हैं और उसमें उत्तर दिशा की शाखाओं पर अकृत्रिम एक जिनमन्दिर है जो एक कोश का लम्बा है, आधा कोश का चौड़ा और कुछ कम एक कोश का ऊंचा। अनेक शोभाओं से सुशोभित है और उसके पूर्व दिशा में जो शाखा है उस पर इस जिनमन्दिर की तरह ही माप वाला भव्य महल है। ये सब पृथ्वी कायिक अकृत्रिम बज्रमय हैं जो कभी नष्ट न होने वाले हैं, उनमें अनेक परमाणु आते-जाते हैं, पर वह मूल रूप सदा बना रहता है। उस प्रासाद पर जम्बूद्वीप का अधिपति व्यन्तरों का मुखिया अनावृत नाम का देव रहता है। उस जम्बू वृक्ष के दक्षिण दिशा में उसकी शाखा पर और पश्चिम दिशा की शाखा पर भी प्रासाद बने हैं, याने भव्य महल हैं जिन पर रमणीक स्थान हैं। ऐसा एक मुख्य जम्बू वृक्ष है जिसके चारों दिशाओं में अनावृत नाम के देव जो समानिक देव हैं, उनके निवास के ४००० जम्बू वृक्ष और हैं। यह सब रचना पृथ्वी-काय की है। इससे दक्षिण पूर्व दिशा में तो भीतरी सभा के ३२००० देव हैं और दक्षिण दिशा में मध्यम सभा के ४०००० देव हैं, दक्षिण-पश्चिम की दिशा में बाह्य सभा के ४८००० देव हैं। पश्चिम दिशा में अनीक अर्थात् सेना जाति के जो महान देव हैं, जो उनमें प्रधान हैं, ऐसे उन ७ प्रकार के सेनाओं के प्रधान के ७ जम्बू वृक्ष हैं, और चार अग्र महिषी याने पट्टरानियों के (देवांगनाओं के) परिवार सहित उन चार रानियों के चार जम्बू वृक्ष हैं, पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओं में १६००० आत्म रक्षक देवों के १६००० जम्बू वृक्ष हैं, इन सब जम्बू वृक्षों में मुख्य वृक्ष है, सुदर्शन, जिसके परिवारभूत ये अनेक वृक्ष हैं। ये सभी वृक्ष बेदिकाओं से बिढ़े हुये हैं। सर्व प्रकार के रत्न स्वर्ण के परिणमन रूप हैं, जहाँ मोती मणि स्वर्ण की घंटाजाल मालायें, ध्वजायें, छत्रादिक से सुशोभित हैं। यह सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष वेदिका से बिढ़ा है जो तीन वनखण्डों से घिरा हुआ है। उस ही मुख्य जम्बू वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।

उत्तर कुरु स्थित सुदर्शन जम्बू वृक्ष बेढें हुए वनखण्डों में रहने वाली रचनाओं का वर्णन—जो जम्बू वृक्ष को बेढ़े हुए तीन वनखण्ड हैं उनमें से पहले वनखण्ड में चारों दिशाओं में बड़े भव्य महल हैं जिनकी लम्बाई एक कोश, चौड़ाई आधा कोश और ऊंचाई कुछ कम एक कोश की है उन वनखण्डों में विदिशाओं में चार पुष्करिणी (वाबड़ी) हैं। पुष्करिणी एक सुन्दर तालाब की तरह की होती है। ये पुष्करिणियां १०-१० योजन गहरी हैं, ५० योजन लम्बी हैं, २५ योजन चौड़ी हैं, चौकोर हैं, उनमें पवित्र सुगंधित जल भरा हुआ रहता है। उन भवनों की जो पुष्करिणी हैं उनके आठों ही दिशाओं में स्वर्ण चाँदी से रचे हुये ८-८ कूट हैं, जिन पर चार-चार भव्य महल हैं, ऐसी बहुत सुशोभित यह भोग भूमि है, जहाँ रहने वाले मुख्य जम्बू वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का ही नाम रखा गया है नील पर्वत जो विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर है उससे दक्षिण दिशा में १००० योजन चलकर सीता नाम की महानदी में दोनों किनारों पर ५०० योजन के अन्तर पर दो पर्वत हैं, जिनका नाम यमक है, जिनकी ऊंचाई १००० योजन है, २५० योजन गहराई है अर्थात् जमीन के अन्दर है और नीचे, मध्य में ऊपर बहुत प्रकार की शोभा से युक्त है। उन यमकों पर ६२॥ योजन ऊंचे, ३१। योजन चौड़े दो भव्य प्रासाद हैं, जिन पर यमक नाम के देव रहते हैं, वहाँ पूर्व दिशा में दो अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं

http://sahjanandvarnishastra.org/

और वहाँ से आगे बढ़कर सीता महानदी से हजार योजन दक्षिण उत्तर में लम्बा और ५०० योजन पूर्व पश्चिम में चौड़ा १० योजन गहरा नील नाम का महान् तालाब है, उस तालाब में जल के ऊपर आधे योजन के ऊंचे, १० योजन के गहरी जिसकी नाल (डंडी) है और एक योजन के विस्तार वाले एक कोश के लम्बे पत्ते वाले दो कोश में जिनकी कणिका है, ऐसे कमल हैं जो पद्म ह्रद में उत्पन्न हुए कमल की तरह परिणाम वाले हैं, वहां नहाँ नील नाम का नागेन्द्र कुमार देव रहता है, उसके कमल जम्बू वृक्ष की संख्या के बराबर हैं। यह सब वर्णन उत्कृष्ट भोग भूमियों का चल रहा है। नील ह्रद से पूर्व में पास ही १० स्वर्णमय पर्वत हैं, जो १०० योजन ऊंचे, २५ योजन गहरे, मूल में १०० योजन विस्तार वाले, मध्य में ७० योजन विस्तार वाले तथा ऊपर ५० योजन विस्तार है, उनके ऊपर देवों के आवास हैं, भव्य प्रासाद बने हुये हैं जो ६१। योजन ऊंचे, १५। योजन चौड़े हैं। यहाँ काँचन नामक देवों के आवास हैं और उस ही प्रकार के १० स्वर्णमय पर्वत पश्चिम दिशा में हैं, अब नील सरोवर से दक्षिण दिशा की ओर ५०० योजन और चलकर उत्तर कुरु नामक ह्रद है, जहां पर उत्तर संज्ञा नामक नागेन्द्र कुमार का आवास है। इस उत्तर कुरु ह्रद का भी वर्णन नील ह्रद की तरह जानना चाहिए। यहाँ भी पूरब और पश्चिम में १०-१० स्वर्णमय पर्वत हैं। उत्तर कुरु ह्रद से दक्षिण की ओर ५०० योजन चलकर चन्द्र नाम का सरोवर है, जहाँ पर चन्द्र नामक नागेन्द्र कुमार का आवास है और पूर्ववत् १० स्वर्णमय पर्वत भी हैं। इस चन्द्र ह्रद से पूर्व की ओर ५०० योजन आगे बढ़कर ऐरावत नाम का तालाब है जिसमें बने प्रासाद पर ऐरावत नाम का नागेन्द्र कुमार रहता है, ऐसा उसका आवास स्थान है। यहाँ पर भी स्वर्णमय १० पर्वत पूर्व की तरह समझना चाहिये। इस ऐरावत सरोवर से दक्षिण की ओर ५०० योजन चलकर माल्यवान नाम का तालाब है, जिसमें माल्यवान नामक नागेन्द्रकुमार का आवास स्थान है। यहाँ पर भी पहले की तरह स्वर्णमय पर्वत है, ऐसे यहाँ इन १०० पर्वतों पर १०० जिनालय हैं, जिनका मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर है।

देव कुरु की सीमा स्वरूप सौमनस व विद्युत्प्रभ वक्षार गिरि का कथन—अब मेरु से दक्षिण दिशा में पूर्व की ओर मंगलावती देश से पश्चिम में और निषध पर्वत से उत्तर में एक सौमनस नाम का वक्षार पर्वत है जो स्फटिक की तरह स्वच्छ है और गंध मादन पर्वत की तरह लम्बाई, चौड़ाई ऊँचाई वाला है, उसके ऊपर मेरु के निकट सिद्धायतन नाम का कूट है, जिस पर अकृत्रिम एक भव्य जिनमन्दिर है, उसके दक्षिण में क्रम से ये ८ कूट हैं, जिनके नाम सोमनस देव कुरु, मंगलावत, पूर्व विदेह, कनक, कांचन, विशिष्ट और उज्ज्वल हैं, इन सबकी रचना गंध मादन कूट की तरह है, इनमें से कनककूट और कांचन कूट इनके ऊपर सुवत्सावत्समित्रा नाम की दिक्कुमारी के प्रासाद हैं, बाकी ६ कूटों पर उस-उस कूटों के नाम वाले देवों के आवास स्थान हैं। अब मेरु से दक्षिण की ओर पश्चिम दिशा में निषध पर्वत से उत्तर में और पद्मवान देश से पूरब में विद्युत प्रभ नाम का वक्षार पर्वत है, जिसका वर्ण तपे हुये स्वर्ण के समान लाल है और जिसकी ऊंचाई आदिक गंध मादन पर्वत की तरह है। उसके ऊपर मेरु के निकट एक सिद्धायतन कूट है जहाँ पर जिन मन्दिर है, उसके दक्षिण की ओर विद्युत्प्रभ, देव कुरु, पद्मद्विषय, अपर विदेह, स्वस्तिक, शतजाल, सीतोरा, व हरि नाम के ८ कूट हैं, जिनमें से दो कूटों पद्म व द्विषय कूट पर वारिषेणा दिक् कुमारी के प्रासाद हैं, स्वस्तिक कूट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर वला दिक्कुमारी के प्रासाद हैं यों दो कूट पर दिग्कुमारी के प्रासाद हैं, शेष कूटों पर उस-उस कूट के नाम वाले देवावत प्रासाद हैं।

जम्बूद्वीपस्थ देव कुरु नामक स्थायी उत्कृष्ट भोग भूमि की रचना का वर्णन—मेरु से दक्षिण की ओर और सौमनस पर्वत से पश्चिम की ओर, निषध पर्वत से उत्तर की ओर और विद्युतप्रभ पर्वत से पूर्व की ओर देव कुरु है। यह देव कुरू उत्कृष्ट भोग भूमि है। मेरु पर्वत से भरत क्षेत्र की ओर है और उनमें दो गजदंत पर्वत की वजह से इनका आकार भरत क्षेत्र की तरह धनुषाकार बन गया है। तो इनमें उसकी डोरी याने ज्या का प्रमाण कितना है? और धनुष पृष्ट का याने उस गोलाई का प्रमाण कितना है और सीधा सूची याने वाण की लम्बाई कितनी है? यह सब जैसा उत्तर कुरु क्षेत्र में कहा गया है उसके समान है। मेरु से दक्षिण, पश्चिम दिशा में और निषध पर्वत से उत्तर में सीतोदा नदी से पश्चिम में और विद्युत्प्रभ पर्वत के पूर्व में ठीक बीच में सुप्रभा नाम का शाल्मलि (सेमर) वृक्ष है। यह शाल्मलि वृक्ष पृथ्वी कायिक है। बहुत विशाल परिमाण को लिए हुए है। जैसे कि उत्तर कुरु में सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष का वर्णन था उसकी तरह सब परिमाण आदिक इनके भी हैं। तो उस शाल्मलि नामक पृथ्वीकाय, विशालकाय वृक्षाकार के उत्तर शाखा पर अरहंत देव का मन्दिर है, अर्थात् जिनायतन है और उसके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम शाखाओं में जो बड़े-बड़े प्रासाद बने हैं उन पर वेणु देवों का आवास है और वहीं उसका परिवार है। यह सब वर्णन उत्तर कुरु में अनावृत देवों के परिवार की तरह जानना चाहिए। अब निषध पर्वत से उत्तर की ओर १००० योजन चलकर सीतोदा महानदी के दोनों किनारे पर चित्रकूट और विचित्र कूट नाम के दो पर्वत हैं। जैसे कि उत्तर कुरु में यमक पर्वत हैं। इस चित्रकूट, विचित्र कूट पर्वत का वर्णन यमक पर्वत की तरह है। यहां भी निषध, देव कुरु, सूर्य, मुलस व विद्युत्प्रभ नाम के ५ ह्रद हैं और जैसे उत्तर कुरु क्षेत्र में ५ ह्रदों का वर्णन था उसी प्रकार इनका भी वर्णन समझना और यहां स्वर्णमय १०० पर्वत जैसे उत्तर कुरु क्षेत्र में बताए गए थे वैसे ही यहाँ भी समझना और वहाँ कुछ कूट पर जिनायतन और कुछ कूटों पर दिग्कुमारियों के आवास स्थान तथा शेष पर कुछ विशिष्ट देवों के आवास हैं।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के उत्तरभाग का वर्णन—मेरू पर्वत की मध्य सीमा लेकर विदेह का एक भाग जो पूर्व विदेह नाम का बना था सो अब सीता महानदी के बीच में होने के कारण दो भाग और हो गए याने पूर्व विदेह में ही उत्तर भाग वाला विदेह और दक्षिण भाग वाला विदेह। अब यहां कर्मभूमियों का वर्णन चल रहा है। अब तक देव कुरु और उत्तर कुरु नाम की उत्कृष्ट भोगभूमि का वर्णन था। अब विदेह के उन भागों का वर्णन किया जा रहा है जिस महाभागों से मुनिजन सतत मुक्ति को प्राप्त होते रहते हैं। तो सीता महानदी पूर्व विदेह में है और उसके होने से दो भाग बन गये—उत्तर भाग, दक्षिण भाग। तो किसी एक भाग का वर्णन लीजिये। वैसा ही वर्णन दूसरे भाग का है। यहाँ उत्तर भाग का वर्णन लीजिए तो यह पूर्व विदेह का उत्तर भाग ४ वक्षार पर्वतों से और ३ विभंग नदियों से ८ हिस्सों में विभक्त हो गया है और वे ८ देश, महादेश ८ चक्रवर्तियों के द्वारा एक साथ उपभोग के योग्य हैं। जैसे भरत क्षेत्र में ६ खण्ड हैं। बीच में विजयार्द्ध पर्वत है, वहाँ चक्रवर्ती हुआ करते हैं। ऐसी ही बात वहाँ है, पर क्षेत्र के आकार का अन्तर है। भरत क्षेत्र का आकार तो धनुषाकार है और विदेह क्षेत्र के इन देशों का आकार एक चतुष्कोण है। तो पूर्व विदेह का उत्तर भाग जिसमें कि ८ देश बने और वे ८ देश कैसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

बने ? चार वक्षार पर्वतों के बीच में हैं–३ विभंग नदियां हैं सो इन सातों के कारण ८ भाग हो गये। तो जो वक्षार पर्वत हैं ४ उनके नाम हैं—चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशिल और इन ४ वक्षार पर्वतों के बीचो बीच याने दो के बीच एक इस तरह से वहां ३ नदियां हैं, जिनके नाम हैं—ग्राहावती, ह्रदावती और पंकावती । तो ये चारों ही वक्षार पर्वत दक्षिण तरफ तो सीता नदी को छुए हुए हैं और उत्तर की ओर नील पर्वत को छुये हुए हैं ये नील पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचे, १०० योजन गहरे हैं, फिर क्रमसे बढ़-बढ़ कर सीता नदी के पास ५०० योजन ऊंचे हो जाते हैं, इनका विस्तार सर्वत्र ५०० योजन है। इन वक्षार पर्वतों की लम्बाई सीतानदी से लेकर नील पर्वत पर्यन्त जितना विस्तार है उतना है। इन वक्षार पर्वतों में से प्रथम चित्रकूट नामक पर्वत के ऊपर ४ कूट हैं, जिनके नाम हैं–सिद्धायतन, चित्र, कच्छ-विजय, सुकच्छ विजय। दूसरा वक्षार पद्मकूट नाम का है, उसके ऊपर ४ कूट हैं, जिसके नाम हैं सिद्धायतन, पद्म, महाकच्छ, कच्छवद् विजय। तीसरा जो वक्षार गिरि है नलिन कूट, उसके ऊपर ४ कूट हैं—सिद्धायतन, नलिन, नलिनावर्त और लांगलावर्त। चौथा जो एक शिलनाम का वक्षार पर्वत है उसके ऊपर ४ कूट हैं—सिद्धायतन, एकशिल, पुष्कल और पुष्कलावर्त। ये सभी कूट उन कूटों के समान परिमाण वाले हैं जो हिमवान पर्वत पर कूट हैं और वहां सिद्धायतनों में जैसी रचना है, जिन मन्दिर है उस प्रकार इन सिद्धायतनों में भी है। शेष सब कूटों में उन कूटों के नाम वाले देव रहते हैं।

तीनों ही विभंग नदियाँ अपने नाम के तुल्य नाम वाले कुण्डों से निकली हैं और ये कुण्ड नील पर्वत के निकट हैं जिनका बहुत उत्कृष्ट वज्रमय तल है जिनकी लम्बाई १२० योजन गोल है, उन कुण्डों में द्वीप हैं जिन पर बने प्रासाद पर उस ही नाम की देवी का निवास है। वहाँ से ये विभंग नदियाँ निकली हैं जो प्रारम्भ में तो १२ योजन और दो कोश के विस्तार वाली हैं। दो कोश की वे गहरी हैं और जहां वे मिली हैं नदी में वहां १२५ योजन विस्तार वाली हैं। वे गव्यूत प्रमाण गहरी हैं और उन प्रत्येक विभंग नदियों में २८००० नदियाँ बीच-बीच में आकर मिलती हैं, सो ये सब विभंग नदियाँ सीता महानदी में प्रवेश करती हैं। इन विभंग नदियों और वक्षार पर्वत के कारण कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छक, कच्छकावर्त, लांगलावर्त, पुष्कल, पुष्कलावर्त ये ८ प्रकार के देश विभक्त हो गये। उन देशों में राजधानियाँ हैं ८। जिनकी नगरियों के नाम हैं—क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्ट पुरी, खड्गा, मंजूषा, औषधि और पौण्डरीकिणी। ये ८ वे नगरियाँ हैं जिनमें ८ तीर्थंकर एक साथ उत्पन्न हो सकते हैं, और जब कभी यह ८ चक्रवर्ती हो सकते हैं। यह हुआ पूर्व विदेह के उत्तर तरफ के भाग का वर्णन।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के उत्तर भाग में विजयार्द्ध गिरि व अन्तर्गत गंगा सिंधु नदी आदिका वर्णन—अब इस ही पूर्व विदेह के उत्तर भाग में और भी देखिये वर्णन कि इन प्रत्येक देशों में ६-६ खण्ड कैसे होते हैं ? पहले कच्छ देश का दिग्दर्शन करें—जो सीता नदी से तो उत्तर दिशा में है। नील पर्वत से दक्षिण दिशा में है। यह पहला देश जोकि भोगभूमि की ओर है वह चित्रकूट पर्वत से तो पश्चिम में है और माल्यवान के समीप जो देवारण्य वन है उससे पूर्व में है। चित्रकूट वक्षार गिरि के समान कच्छ देश का आयाम है और पूर्व से पश्चिम में उसकी चौड़ाई है जो २२१३ योजन प्रमाण है उसमें थोड़ा ही कम है। उसके ठीक मध्यभाग में विजयार्द्ध गिरि है जिसकी ऊंचाई और अवगाह और विषकम्भ अन्य विजयार्धन पर्वत की तरह है तथा लम्बाई कच्छ देश के विस्तार के समान है। उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विजयार्द्ध पर्वत पर ऊँचे चढ़ कर दो विद्याधरों की श्रेणियाँ हैं, जिनमें ५५-५५ नगर हैं। उससे और ऊंचे चढ़कर व्यन्तर देवों के निवास की श्रेणियाँ हैं। वहां ऐसान इन्द्र के लोकपालों का निवास स्थान है। सोम, यम, वरुण, वैश्रवण के नगर हैं। उनके आभियोग्य देवों के नगर हैं। उस विजयार्द्ध पर्वत के अन्तिम शिखर पर ९ कूट हैं, जिनमें पहला है-जो पूर्व दिशा में है उसका नाम है सिद्धावतन कूट। विजयार्द्ध से उत्तर दिशा में और नील पर्वत से दक्षिण दिशा में और सिद्धकूट एवं वृषभ पर्वत से पूर्व दिशा में चित्रकूट से पश्चिम दिशा में एक गंगा कुण्ड है जहां गंगादेवी का निवास है। उस गंगा कुण्ड का तल उत्कृष्ट बज्र की तरह दृढ़ है। ६३ योजन का लम्बा चौड़ा है। १० योजन का गहरा है। उसके ठीक बीच में एक छोटा द्वीप है जो ८ योजन का लम्बा चौड़ा है और १० योजन एवं ४ कोश की (दो गव्यूत की) ऊँचाई है। वेदिकाओं से मंडित है। चारों तरफ तोरण लगें हुए हैं ऐसी वहां गंगा देवी का निवास है। वहां से दक्षिण दरवाजे से निकली हुई गंगा महानदी जो दक्षिण की ओर बह रही भरत क्षेत्र की गंगा की तरह जिसका अवगाह और विष्कम्भ है। क्षेत्र के समान लम्बाई है। वह गंगा नदी विजयार्द्ध पर्वत के खण्ड प्रपात नाम की गुफा से निकली है। जिसमें १४००० नदियों का पर्वत मिल गया है ऐसी गंगा महानदी सीता नदी में प्रवेश करती है, जैसे कच्छ देश में गंगा कुण्ड का वर्णन किया था वैसा ही विजयार्द्ध से उत्तर की ओर और नील से दक्षिण की ओर, वृषभाचल से पश्चिम की ओर तथा माल्यवान पर्वत के पास रहने वाले देवारण्य से पूर्व की ओर सिंधु कुण्ड है। यह सिंधु कुण्ड ठीक उतने ही विस्तार वाला है जितना कि यह गंगा नदी का विस्तार है। इस सिंधु कुण्ड से सिंधु नाम की महानदी निकली है और विजयार्द्ध पर्वत के तमिश्रगुहा नाम की गुफा से निकल कर सीता महानदी में प्रवेश करती है। इस सिंधु नदी में भी १४००० नदियां और मिल जाती हैं। इस ही देश में सीता नदी से उत्तर की ओर, विजयार्द्ध से दक्षिण की ओर और गंगा, सिंधु नदियों के ठीक मध्य देश में क्षेमा नाम की राजधानी है। इसी प्रकार ७ देशों में भी वर्णन समझना चाहिए। इस क्षेमा नामक राजधानी वाले देश में तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिक उत्पन्न होते हैं। यहां लवण समुद्र की वेदिका से पश्चिम की ओर और पुष्कलावती से पूर्व की ओर सीता नदी से उत्तर की ओर और नील पर्वत से दक्षिण की ओर देवारण्य नाम का वन है। देवारण्य बन का सीता नदी के पास विस्तार है २९२२ योजन का और लम्बाई है १६५९२ योजन तथा एक योजन के १९ भागों में दो भाग प्रमाण है।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के दक्षिण भाग की रचना का कथन—इस सीता नदी से दक्षिण की ओर और निषध पर्वत से उत्तर की ओर वत्स देश से पूर्व की ओर और लवण समुद्र की वेदिका से पश्चिम की ओर पहले के तरह देवारण्य नाम का वन है। सीता नदी के दक्षिण की ओर जो पूर्व विदेह है वह चार वक्षार पर्वतों से और तीन विभंग नदियों से विभक्त होने के कारण यह भी आठ भागों में बंट गया है। जहां ८ तीर्थंकर हो सकते हैं। जहां ८ चक्रवर्तियों का राज्य होता है यह वर्णन अब चल रहा है पूर्व विदेह के दक्षिण भाग का। वहां जो ४ वक्षार पर्वत हैं उनका नाम है त्रिकूट, वैश्रवणकूट, अंजन कूट, आत्माञ्जन। इन ४ वक्षार पर्वतों के मध्य में तीन विभंग नदियाँ हैं, जिनका नाम है तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला। इन वक्षार पर्वत और विभंग नदियों के कारण इस दक्षिण भाग के ८ भाग हो जाते हैं, जिनमें ये देश हैं—वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सवती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मंगलावती। इन देशों के मध्य में ८ राजधानियाँ हैं जिन नगरियों के नाम हैं—सुसीमा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुण्डला, अपराजिता, प्रभाकरी, अंकावती, पद्मावती, शुभा, रत्नसंचयावती। उन आठों देशों में २-२ नदियाँ और बही हैं जिनका नाम है रक्ता, रक्तोदा। इन प्रत्येक देशों में १-१ विजयार्ध पर्वत है इन सबका वर्णन उत्तर भाग के इन्हीं के समान जानना। वक्षार पर्वत पर ४-४कूट हैं, जिनमें एक सिद्धायतन कूट है, जहां अकृत्रिम जिन मन्दिर है। शेष ३ कूटों पर देवों के निवास स्थान हैं। सीता नदी से उत्तर तट पर और दक्षिण तट पर प्रत्येक देश में ३-३ तीर्थ हैं जिनका नाम है मागध, वरदा, प्रभास। ऐसे ये सब मिलकर ४८ क्षेत्र होते हैं याने दक्षिण भाग में २४ और ८ देशों में प्रत्येक में तीन तीन और उत्तर भाग में भी इसी प्रकार ८ में ३-३ होने से २४ हैं। इस तरह पूर्व विदेह वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ पश्चिम विदेह के दक्षिण भाग का वर्णन—अब पश्चिम विदेह की बात सुनो। पश्चिम विदेह में सीतोदा महानदी निकली है, उसके कारण पश्चिम विदेह के दो भाग हुए हैं—दक्षिण भाग और उत्तर भाग। उनमें से दक्षिण भाग ४ वक्षार पर्वत और ३ विभंग नदियां, इनके कारण आठ देशों में विभक्त हो गये हैं। जहां आठ तीर्थंकर हो सकते हैं और आठ चक्रवर्तियों के द्वारा वहां साम्राज्य चलता है। जो सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग में वक्षार पर्वत हैं उनके नाम हैं—शब्दवान, विकृतवान, आशाविष और सुखावह। उन ४ वक्षार पर्वतों के अन्तर में ३ विभंग नदियां हैं जिनके नाम हैं—क्षीरोदा, सीतोदा, स्रोतोन्तर्वाहिनी। इन ४ वक्षार पर्वत व आठ विभंग नदियों के कारण ८ देश बने हैं, जिनके नाम है—पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मावर्त, शंख, नलिन, कुमुद और सरित। इन देशों के बीच में एक-एक राजधानी है, जिसकी नगरियों के नाम हैं—अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, अरजा, विरजा, अशोका व वीतशोका। उन देशों में दो नदियां हैं, जिनका नाम है-रक्ता, रक्तोदा। इन देशों के बीच में एक-एक विजयार्ध पर्वत है। तो विजयार्ध पर्वत और रक्ता, रक्तोदा नदी, इसके कारण प्रत्येक देश के ६ भाग हो जाते हैं। इन सबका विस्तार लम्बाई आदिक का वर्णन जैसे अन्य देश का है उस तरह का जानना चाहिये। प्रत्येक वक्षार पर्वत के ऊपर ४-४ कूट हैं, जिनमें एक सिद्धायतन है, जहां कि अकृत्रिम जिन मन्दिर है। शेष ३ कूट देवों के निवासरूप है। देवारण्य वन में भी दो दो कूट पहले की तरह जानना। इस प्रकार यह पश्चिम विदेह के दक्षिण विभाग का वर्णन किया।

जम्बूद्वीप एक पश्चिम विदेह के उत्तर भाग की रचना का कथन—इसी प्रकार पश्चिम विदेह के उत्तर विभाग का विदेह भी चार वक्षार पर्वत और तीन विभंग नदियों के कारण ८ देशों में विभक्त हो गया है, जहाँ ८ तीर्थंकर एक साथ हो सकते हैं और कभी-कभी ८ चक्रवर्तियों का वहाँ साम्राज्य होता है, वहाँ जो वक्षार पर्वत हैं उनका नाम चन्द्र, सूर्य, नाग और देव। उन वक्षार पर्वतों के मध्य में जो एक-एक विभंग नदी हैं उनका नाम है—गम्भीरमालिनी, फेर मालिनी और धर्मिमालिनी, इन वक्षार पर्वत और विभंग नदियों के कारण जो ८ देश बनते हैं उनका नाम है वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावान, वल्गु, सुवल्गु, गंधिल, गंधि-माली। उन देशों के मध्य में एक-एक राजधानी है जो समस्त ८ राजधानियाँ हैं, इनकी नगरियाँ विजया, बैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या नाम की हैं। उन प्रत्येक देशों में गंगा, सिंधु नाम की दो-दो नदियाँ हैं ओर एक-एक विजयार्ध पर्वत है। इन सब नदियों का विजयार्ध पर्वत का, गंगा, सिंधु कुण्ड का सबका वर्णन जैसे विदेह के और-और इनके वर्णन हैं वैसे ही इनका वर्णन है। वक्षार पर्वत पर प्रत्येक पर्वत पर ४-४ कूट हैं, जिनमें एक सिद्धायतन कूट हैं जहाँ अकृत्रिम जिनमन्दिर है, शष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देवों के निवास के कूट हैं—सीतोदा नदी में भी सीता नदी की तरह ४८ तीर्थ हैं।

जम्बूद्वीपस्थ विदेह के बत्तीस भागों में शाश्वत मोक्षमार्ग की धारा - उक्त प्रकार से विदेह क्षेत्र के दो भाग बताये गये, उनमें भी प्रत्येक में दो भाग और उनमें भी प्रत्येक के ८-८ भाग कहे गए हैं। इस विदेह क्षेत्र में सतत मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविकाओं का संग विद्यमान रहता है। धर्म की प्रवृत्ति, उपदेश की परम्परा तीर्थंकरों के सर्वांग से दिव्य ध्वनि सुनने का अवसर सदा बना रहता है और यहाँ से तीर्थंकर व अन्य मुनिजन मोक्ष पाते रहते हैं, इस कारण से इन सबका नाम विदेह है। इस जम्बूद्वीप के विदेह में एक साथ तीर्थंकर अधिक से अधिक हों तो ३२ हो सकते हैं, क्योंकि देश भी सब ३२ हैं। इन सब देशों में सदा तीर्थंकर हो सकते हैं तथा यथा समय सदा सभी देशों में चक्रवर्ती हो सकते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ विदेह क्षेत्र मध्यवर्ती मेरु पर्वत की रचना का कथन—अब इस विदेह क्षेत्र के मध्य में जो मेरु पर्वत है, जिसका नाम है सुदर्शन मेरु उसमें क्या-क्या रचनायें हैं, भूतल पर कैसी रचना है, ऊपरी भाग तक कैसी रचना चली गई है? इसका भी वर्णन ज्ञातव्य है, क्योंकि इस मेरु पर्वत की अनेक कारणों से बड़ी महिमा है। इसी मेरु पर्वत के ऊपर चार दिशाओं में चार शिलायें हैं, जिन पर भरत, ऐरावत पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। इस मेरु पर्वत पर चार भागों में अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं, ऐसा यह मेरु पर्वत पूज्य है, साथ ही एक महिमा की बात यह है कि ढाई द्वीप के अन्दर जितने भी सूर्य, चन्द्र हैं वे सब सूर्य, चन्द्र इस सुदर्शन मेरु की प्रदक्षिणा दिया करते हैं। मेरु पर्वत अन्य द्वीपों में भी है, मगर जिन द्वीपों में मेरु है उन द्वीपों के सूर्य, चन्द्र अपने द्वीपों के मेरु की प्रदक्षिणा नहीं करते, किन्तु सभी सूर्य, चन्द्र जो प्रदक्षिणा देने वाले हैं याने ढाई द्वीप के अन्दर हैं वे सब इस सुदर्शन मेरु की परिक्रमा दिया करते हैं यह मेरु पर्वत ९९००० योजन ऊंचा है। पृथ्वी में १००० योजन गहरा है और १००९० १०/११ योजन इसकी चूलिकादि है। इस मेरु पर्वत के भूतल पर विस्तार ३११९० तथा ११ योजन और उसमें से थोड़ा सा कम। भूतल पर उसकी परिधि हैं १०,००० योजन, भूतल पर उसका विस्तार ३१६३२ योजन है, जिनमें जरा थोड़ा ही कम है। और उसकी परिधि चारों वन सहित तीन खण्ड में है, जिनकी तीन श्रेणियाँ हैं।

भद्रशाल वन की रचना का वर्णन—मेरु से लिये हुए ४ वन हैं, भद्रशाल वन, नन्दन वन, सौमनस और पांडुक, इनमें से भूमि तल पर तो भद्रशाल वन है, जो पूर्व, पश्चिम दिशा में २२,००० योजन लम्बा है और दक्षिण, उत्तर दिशा में २५०० योजन लम्बा है। ये वन बहुत तोरण वाले, दरवाजों वाले एक वेदिका के द्वारा घिरे हुए हैं। इस भद्रशाल वन में मेरु की चारों दिशाओं के ८ कूट हैं, जिनका नाम है पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक अंजन, कुमुद, पलास, अवतंस और रोचक, एक-एक दिशा में दो-दो कूट होने से ये ८ कूट बन गए हैं। मेरु पर्वत के भद्रशाल वन में चारों दिशाओं में जो ८ कूट बताये गए हैं वे कूट किस-किस स्थान पर हैं, अब यह बात कह रहे हैं। मेरु के पूर्व में और सीता नदी के उत्तर के तट पर पद्मोत्तर नाम का कूट है। मेरु से पूर्व में और सीता नदी के दक्षिण तट पर नील कूट है। मेरु के दक्षिण में और सीतोदा नदी के पूर्व तट पर स्वस्तिक कूट है। मेरु के दक्षिण में और सीतोदा के पश्चिम तट पर अंजन कूट है। मेरु के पश्चिम में और सीतोदा के दक्षिण तट पर कुमुद कूट है। मेरु से पश्चिम में और सीतोदा के उत्तर तट पर पलास कूट है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरु के उत्तर में और सीता नदी के पश्चिम तट पर अवतंस कूट है। मेरु के उत्तर में और सीता नदी के पूर्व तट पर रोचन कूट है। ये सभी कूट २५ योजन गहरे हैं अर्थात् पृथ्वी के नीचे हैं और इनका नीचे मूल में विस्तार १०० योजन है। ऊपर चलकर मध्य में विस्तार ७५ योजन है और ऊपर चलकर अन्त में विस्तार ५० योजन है। ठीक मध्य देश में ८ प्रासाद हैं जो ३१ योजन है एक कोश ऊंचे हैं, १५ योजन और दो गव्यूत प्रमाण लम्बे और चौड़े हैं। उन प्रसादों पर जैसे-जैसे कूट के नाम हैं इसी प्रकार के नाम वाले दिग्गजेन्द्र देव बसते हैं। ये दिग्गजेन्द्र चार लोकपालों के हैं और अनेक प्रकार के ऐरावत आदिक रूपों को बनाने में समर्थ हैं। वहाँ पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक और अंजन कूट इन चार कूटों पर इन्द्र एवं लोकपालों के सुन्दर विहार करने के स्थान हैं। शेष बचे हुए कुमुद पलास अवतंस और रोचन कूटों पर ऐशान इन्द्र के लोकपालों के विहार स्थान हैं। इन कूटों पर ऐसे प्रवेश के तीन द्वार हैं—पूरब, उत्तर और दक्षिण में जो नाना मणि कांचन चांदी आदिक धातुमय हैं, जिनका हजार जिह्वा रखने वालों के द्वारा भी वर्णन नहीं हो सकता। सहस्र आँख वाला सहस्र आँखों को फैलाकर भी देखें तो भी तृप्त नहीं हो सकता। ऐसा यह सुन्दर द्वार है, जो ५० योजन चौड़े, १६ योजन ऊंचे और ८ योजन चौड़े हैं।

भद्रशाल वन में स्थित मुखमण्डप, प्रेक्षागृह स्तूप व चैत्यवृक्ष पीठों का कथन—भद्रशाल वन में मुख्य द्वारों के आगे १०० योजन लम्बे, ५०योजन चौड़े और कुछ अधिक १६ योजन ऊँचे मुखमण्डप हैं। चूंकि यहां निरन्तर विहार स्थान है तो मण्डप प्रेक्षागृह और स्तूप इनकी सुन्दर रचना है। इन मुख मण्डपों के आगे सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े और कुछ अधिक १६ योजन ऊंचे प्रेक्षागृह हैं, याने एकसुरम्य स्थान है। उनके आगे ६४ योजन लम्बे और उतने ही चौड़े, इससे कुछ अधिक तीन गुना परिधि वाले स्तूप हैं। इन स्तूपों के आगे चैत्यवृक्ष पीठ हैं जो १६ योजन लम्बे, ८ योजन चौड़े और ८ योजन ऊँचे हैं, जिनके प्रत्येक के ४-४ तोरण में विभक्त वेदिकायें हैं, जो २४ वेदिकायें हैं उनसे ये चैत्यवृक्ष पीठ घिरे हुए हैं। इन पीठों के मध्य में सिद्धार्थ नाम का चैत्यवृक्ष है जहाँ अकृत्रिम जिन मन्दिर है और बहुत उत्तम जिसकी शोभा है, उन चैत्यवृक्षों से पूर्व में नाना मणि रत्नों से रचित पीठहै और उसमें १६ योजन ऊँचे और एक गव्यूत प्रमाण चौड़े लम्बे महेन्द्र की ध्वजायें हैं। उससे पूर्व में गंगा नाम की पुष्करिणी है, जो १०० योजन लम्बी, ५० योजन चौड़ी और दस योजन गहरी है। जिसके मध्य में अकृत्रिम अरहंत मन्दिर है, जिन मन्दिर है। जहां रत्नमय देवछन्द बने हुए हैं, जो कि सोलह योजन लम्बे, ८ योजन चौड़े व उतने ही ऊँचे हैं। वहाँ पर बहुत शोभायमान यक्ष नाग के जोड़े बने हुए हैं। ये सब अकृत्रिम रचनायें हैं। यक्ष, नाग, युगल ५०० धनुष ऊँचे स्वर्णमय जिन की देह है और तपे हुए स्वर्ण की भांति अत्यन्त लाल जिनके हाथ, पैर, तला तालू और जिह्वा है। जिसके नयन ऐसा शोभित होते हैं जैसे लोहिताक्षमणि से घिरे हुए और स्फटिकमणि की तरह जिसके नेत्र की तारायें अरिष्टमणि से रची हुई हैं। चाँदी रूप दन्त पंक्तियां हैं। मूगों के वर्ण की तरह अधर और पुट हैं। अंज मूल रचित जिनके पलक हैं, नीलमणि से रचित काले केश हैं। ऐसे अनेक आवरणों में से अलंकृत वहाँ यक्ष नाग युगल हैं। इन्हीं कूटों पर अरहंत प्रतिमायें हैं जो अनादि निधन हैं। १०८ संख्या में हैं, सुन्दर १०००८ लक्षणों से चिह्नित हैं। भव्य जन जहाँ स्तवन बंदन पूजन किया करते हैं। जहां १०८ कलश भृंगार आदिक उपकरणों से शोभित है, जिसका वैभव वर्णन से परे है। मानों मूर्त रूप रखकर ही मानों जिन धर्म शोभित हो रहा है। तरह भद्रशाल वन में बहुत अपूर्व शोभा बनी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुई है। जिस भद्रशाल वन में देवताओं के बहुत विहार हैं, अपूर्व शोभा वाले जिन मन्दिर हैं। ये मेरु पर्वत के नीचे भाग पर, भूतल पर यह एक विचित्र शोभा है, जिसका मेरु पूजावों में विशेष कर वर्णन आता हैं। अब इस बाद नन्दन वन का वर्णन चलेगा।

जम्बू द्वीपस्थ मेरु की कटिपर अवस्थित नन्दन वन की रचना का कथन—भद्रशाल के वर्णन के पश्चात अब नन्दन वन का परिचय कराया जा रहा है। जहां भद्रशाल बन है याने भूमि पर भद्र-शाल वन है वहां से ५०० योजन ऊपर चलकर नंदन वन है, जिसका विस्तार ५०० योजन और आयाम मायने लम्बाई उतनी है जितनी कि वहां मेरु का आयाम मण्डल है। नन्दन वन बेदिका से घिरा हुआ है। गोल-गोल वह वन है। उसकी परिधि भी गोल है। उस नन्दन वन के स्थान पर मेरु पर्वत का बाह्य विष्कम्भ ६६५४ सही ६/११ योजन है और उसकी परिधि याने जहाँ नन्दन वन है वहां के मेरु की परिधि ३१४७९ योजन तथा कुछ अधिक है। भीतरी पर्वत का विष्कम्भ ८६५४ योजन तथा ६/११ योजन भाग प्रमाण है। उसकी परिधि २८३१६ योजन तथा एक योजन का ८/११ भाग प्रमाण है। चारों दिशाओं में ४ गुफायें हैं। पूर्व दिशा में मणि गुहा, दक्षिण दिशा में गंधर्व गुहा, पश्चिम दिशा में चारण गुहा और उत्तर दिशा में चन्द्र गुहा। ये सब गुफायें ३० योजन लम्बी चौड़ी हैं। कुछ अधिक ६० योजन इनकी परिधि है और ६० योजन गहरी हैं, उन गुफावों में क्रम से सोम, यम, वरुण और खचर, इनका विहार स्थान है। मेरु पर्वत से पूर्वोत्तर दिशा में नन्दन वन में बलभद्र कूट है, जिस कूट की की ऊँचाई १००० योजन है। मूल में तो १००० योजन का विस्तार है। मध्य में ८०० योजन का विस्-तार है और अन्तमें ऊपर ५०० योजन का विस्तार है। इससे तिगुनी तथा कुछ अधिक उस कूट की परिधि है, उसके ऊपर मंदर याने मेरु पर्वत के अधिपति का आवास स्थान है। मेरु के चारों दिशावों में दो-दो कूट हैं पूर्व दिशा में तो नन्दन और मन्दिर नाम के कूट हैं। दक्षिण दिशा में निषध और हैम-वत नाम के कूट हैं, पश्चिम दिशा में रजत और रुचक नाम के कूट हैं। उत्तर दिशा में सागर और चित्र वज्र नाम के कूट हैं। ये आठों ही कूट ५०० योजन ऊंचे हैं। मूल में ५०० योजन विस्तार वाले हैं। मध्य में ३७५ योजन विस्तार वाले हैं और अन्त में ऊपर २५० योजन विस्तार वाले हैं। उन कूटों के ऊपर ८ प्रासाद हैं। जिन पर ८ दिक्कुमारियाँ रहती हैं। पूर्व आदिक दिशा में क्रम से जो दिग्कुमा-रियाँ रहती हैं उनका नाम यह है—मेघंकरी, मेघवती' सुमेघ, मालिनी, तोयंधरा, विचित्रा, पुष्कर-माला और अनिन्दिता, ये ८ दिग्कुमारियाँ उनकूटों पर रहती हैं। मेरु के दक्षिण पूर्व दिशा में ४ बावड़ी हैं जिनके नाम हैं—उत्पलगुल्मा, नलिन, उत्पल, और उत्पलोज्ज्वला। दक्षिण पश्चिम दिशा में ४ पुष्करिणी हैं जिसके नाम हैं—भृंगा, भृंगनिमा, कज्जल व प्रभा। पश्चिमोत्तर दिशा में ४ बावड़ी हैं जिनका नाम है–श्रीकान्ता, श्रीचंडा, श्री निलया, श्री महिता। उत्तर पूर्व दिशा में ४ बावड़ी हैं जिनके नाम हैं—पद्मा, पद्मगुल्मा, कुमुदा कुमुदप्रभा। ये सभी बावड़ियाँ ५० योजन लम्बी, २५ योजन चौड़ी और १० योजन की गहरी हैं। ये ४ कोने वाली हैं, जिससे ये लम्बी चौकोर हो जाती हैं। उन बावड़ियों के बीच में प्रत्येक में एक-एक प्रासाद है। जिन प्रासादों में दक्षिण दिशा में तथा उसकी विदिशा के दोनों भागों में सौधर्म इन्द्र के विहार करने के प्रासाद हैं। उत्तर दिशा में और वहाँ के पास की दोनों विदिशाओं में ऐशान इन्द्र के विहार स्थान हैं। मेरु के चारों दिशाओं में नन्दन वन में ४ जिनालय हैं। जिनकी ऊँचाई ३६ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौड़ाई २५ योजन है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनका द्वार पश्चिम की ओर है। ८ योजन ऊँचे और ४ योजन लम्बे हैं। यहां अकृत्रिम जिन मंदिर है। यहां तक नन्दन वन का वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थमेरु के वक्षस्थल पर अवस्थित सौमनस वन की रचना का कथन—अब आगे सौमनस वन का वर्णन कर रहे हैं। नन्दन वन मेरु के जिस भाग में है उस भाग से ६२५०० योजन ऊपर चलकर सौमनस वन है, जो गोल बलयाकार है। पद्मवर वेदिका से घिरा हुआ है। उस नंदन वन के बाह्य गिरि का विष्कम्भ अर्थात जब नन्दन वन उस पर्वत पर बहुत चौड़ाई में है तो उस नंदन वन का जो आखिरी भाग है वह वहां के पर्वत का बाहरी भाग है। उसका विस्तार ४२७२ योजन तथा एक योजन के ११ भागों में ८ भाग प्रमाण है इस बाह्य गिरि की परिधि १३५११ योजन तथा ६/११ योजन मात्र प्रमाण है। इस नन्दन वन के आभ्यन्तर गिरि का विस्तार अर्थात मेरु के भीतरी भाग से जहां से नन्दन वन प्रारम्भ होता है वहां के भीतरी गिरि का विष्कम्भ ३२७२ ८/११ योजन है, परिधि १०३४९ ३/११ योजन प्रमाण है, इससे थोड़ा सा कम है। इस नन्दन वन में १६ बावड़ी हैं याने प्रत्येक दिशा में ४-४ बावड़ी हैं, जिनकी लम्बाई चौड़ाई नन्दन बावड़ी की तरह है, और उनके मध्य में भवन बने हुये हैं जिनकी ऊंचाई ३६ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौड़ाई २५ योजन है। चारों दिशाओं में ४ जिनालय हैं, जिनके द्वार पूरब, उत्तर और दक्षिण में हैं। जैसे कि मेरु की पूजा में या भक्ति में मेरु पर्वत के जिनालयों में से ये सब १६ जिनालय हैं। यहां तक सौमनस वन का वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ मेरू पर्वत के स्कंध पर अवस्थित पाण्डुक वन की रचना का कथन—अब पांडुक वन का वर्णन करते हैं। सौमनस वन जहाँ पर है उस भू भाग से और ऊपर ३६००० योजन चढ़कर पांडुक वन है जो गोल बलय में है, जिसकी परिधि गोल है। ४९४ योजन जिसका विस्तार है। वेदिका से घिरा हुआ है। इसके बाए आगे चूलिका प्रारम्भ होगी। मेरु का शेखर १००० योजन चौड़ा है, जिसकी परिधि ३१६० योजन तथा कुछ और है। पांडुक वन के बहुत मध्य भाग से एक चूलिका प्रारंभ होती है, जो गोल है, ४० योजन ऊंची है। मूल में १२ योजन चौड़ी मध्य में ८ योजन चौड़ी और अन्त में ४ योजन चौड़ी है। पांडुक बन में पूर्व दिशा में पांडुक शिला है जो उत्तर और दक्षिण तरफ लम्बी है। पूर्व और पश्चिम तरफ चौड़ी है। दक्षिण दिशा पांडुकम्बल शिला है, जो पूर्व पश्चिम में लम्बी है, उत्तर दक्षिण में चौड़ी है। पश्चिम दिशा में रक्त-कम्बल शिला है जो पूर्व पश्चिम लम्बी है, उत्तर दक्षिण में विस्तार वाली है। उत्तर दिशा में अति-रिक्त कम्बल शिला है जो पूर्व पश्चिम लम्बी है और उत्तर दक्षिण चौड़ी है। ये चार वे शिलायें हैं जहां पर तीर्थंकर भगवान का जन्म होने पर अभिषेक के लिए इन्द्र ले जाता है। पांडुक शिला तो चाँदी और स्वर्णमयी है। पांडुकम्बल शिला चाँदीमय है, रक्त कम्बल शिला मूंगे के वर्ण की तरह है। अतिरिक्त कम्बल शिला यह स्वर्णमयी है। ये चारों ही शिलायें एक समान विस्तार वाली हैं। इनकी लम्बाई ५०० योजन है, चौड़ाई २५० योजन है। मोटाई ४ योजन है। इनको अर्द्ध चन्द्र की तरह है। ये वेदिका से घिरी हैं। इनके चारों ओर तोरण द्वार हैं जो सफेद और स्वर्णमय स्तूपिका से अलंकृत हैं। इन सिलावों के ऊपर बहुत ही अच्छा सिंहासन है, जिसका मुख पूर्व की ओर है, ऊंचाई ५०० धनुष है, लम्बाई २५० धनुष है और चौड़ाई १२५ धनुष है। जो सिला पूर्व विदेह की ओर है वहां उस सिंहासन पर पूर्व विदेह में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। दक्षिण तरफ वाले सिंहासन पर भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। पश्चिम दिशा के सिंहासन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर पश्चिम विदेह में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। उत्तर दिशा में ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। इन्द्र सपरिवार बड़ी विभूति के साथ १०००८ स्वर्णमय कलशों से क्षीरोपधि समुद्र के जल से तीर्थंकरों का अभिषेक किया करता है।

जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शन मेरु गिरि की कुछ अन्य विशेषतायें—भद्रशाल वन में जो भूतल है, पृथ्वी है उसका वर्ण लोहिताक्ष की तरह लाल है, उसके ऊपर-ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढ़-चढ़कर वर्ण बदलता रहता है, जैसे प्रथम १६ १/२ हजार योजन पर पद्म वर्ण है, उसके ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढ़कर तपनीय स्वर्ण की तरह वर्ण है, उससे भी १६ १/२ हजार योजन चढ़कर वैडूर्य वर्ण है, उससे भी ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढ़कर नील वर्ण मिलता है, उससे भी ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढ़कर हरिताल वर्ण मिलता है, उससे भी १६ १/२ हजार योजन बाद स्वर्ण वर्ण मिलता है। नीचे भूमि में जो मेरु पर्वत पड़ा हुआ है, एक हजार योजन गहरा है, उसका परिणाम पृथ्वी, पत्थर, बालू और छोटे कंकड़ ऐसे चार प्रकार के परिणाम हैं, और कुछ पृथ्वी भाग के ऊपरी भाग में तीन तरह की पृथ्वी हैं, जो प्रथम कांड तो वैडूर्यवत है, दूसरा काण्ड सर्व रत्नमय है, तीसरा कांड स्वर्णमय है। चूलिकायें वैडूर्यमणि की तरह वर्ण वाली हैं। यह मेरु पर्वत तीनों लोक का मानदन्ड है अर्थात् मेरु से ही तीन लोक का विभाग बनाया गया है। जैसे मेरु पर्वत जहाँ तक नीचे है याने इस भूमि से १००० योजन नीचे तक गहरा है, तो वहाँ से नीचे अधोलोक होता है और चूलिका के ऊपर से ऊर्द्ध लोक है और शेष मध्य में तिर्यक लोक पड़ा हुआ है। तो मेरु शब्द का भी यह ही अर्थ है कि जो तीन लोक का प्रमाण करा दे उसे मेरु कहते हैं। संस्कृत में इसकी निरुक्ति है—लोकत्रयं मिनातिइति मेरुः। यह मेरु पर्वत भूमि तल पर जितने विस्तार वाला है उस विस्तार से ऊपर शिखर पर्यन्त ११ प्रदेशों में हीन होता जाता है याने ११ कोश ऊपर एक कोश कम हो जाता है, ११ योजन ऊपर एक योजन कम हो जाता और शिखर से नीचे की ओर देखा जाए तो ११ प्रदेशों पर एक प्रदेश बढ़ता है याने ११ योजन नीचे जाने पर एक योजन बढ़ जाता है। इस तरह हर ११ वें योजन पर एक-एक योजन बढ़ता हुआ जाता है। इस तरह विदेह क्षेत्र का वर्णन समाप्त हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ रम्यक क्षेत्र का परिचय—अब विदेह क्षेत्र के बाद रम्यक क्षेत्र है उसका वर्णन कर रहे हैं। इस क्षेत्र का रम्यक नाम क्यों पड़ा ? उसका समाधान यह है कि रमणीय देशों के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम रम्यक पड़ा है। जहाँ नदी, पर्वत, वन देश बहुत सुन्दर-सुन्दर हो, उन सब सुन्दर रचनाओं से युक्त है, यह क्षेत्र; इस कारण से इस क्षेत्र का नाम रम्यक है। यहाँ शंका हो सकती है कि रम्यक देश का सम्बन्ध तो सर्वत्र है याने सभी देश अपनी-अपनी रचना में सुहावने हैं, फिर इस ही क्षेत्र का नाम रम्यक क्यों रखा गया ? समाधान यह है कि यह तो रम्यक शब्द की व्युत्पत्ति से अर्थ किया है, पर रुढ़ि बल से इस क्षेत्र का नाम रम्यक पड़ा है। जैसे गौ शब्द का अर्थ है जाना। जावे सो गौ, मगर गौ की रुढ़ि गाय में ही बनती है। यह रम्यक क्षेत्र किस जगह बसा हुआ है ? यह रम्यक क्षेत्र नील पर्वत से उत्तर की ओर और रुक्मी पर्वत से दक्षिण की ओर तथा इसके पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र हैं। तो यों दोनों ओर का समुद्र और दोनों ओर के पर्वतों के बीच में इस रम्यक क्षेत्र की रचना है। इस रम्यक क्षेत्र के मध्य में गंधवान नामक एक पर्वत है जो शब्दवान पर्वत की तरह वर्ण वाला है। इस ही पर्वत को घेरकर नारी नरकान्ता महानदी दिशायें बतलाती हैं। इस गंधवान पर्वत पर एक प्रासाद है जिस पर पद्मदेव का निवास है। इस क्षेत्र में मध्यम भोग भूमि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, जहाँ दो पल्य की आयु के मनुष्य पशु और पक्षी हैं। ये जोड़े माता-पिता अथवा पुरुष-स्त्री हैं, सदा भोगों में रमण किया करते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ हैरण्यवत क्षेत्र का परिचय—अब रम्यक क्षेत्र के बाद हैरण्यवत क्षेत्र आता है। हैरण्यवत क्षेत्र का नाम यह क्यों पड़ा ? उसका कारण है कि उसके पास यह रुक्मी नाम का पर्वत है, वह स्वर्ण वर्णवाला है, हिरण्यवान है। उसके पास होने के कारण इस क्षेत्र का नाम हैरण्यवत रखा गया है। यह हैरण्यवत क्षेत्र कहाँ पाया जाता है ? यह रुक्मी और शिखरी इन दो पर्वतों के अन्तराल में पाया जाता है। यह क्षेत्र रुक्मी पर्वत के उत्तर में और शिखरी पर्वत के दक्षिण में तथा पूर्व, पश्चिम समुद्र के अन्तराल में यह हैरण्यवत क्षेत्र है और उसका इतना ही बड़ा विस्तार है, इस हैरण्यवत क्षेत्र के मध्य में माल्यवान नाम का एक गोल पर्वत है, जैसे कि भरत ऐरावत क्षेत्र को छोड़कर शेष के ५ क्षेत्रों में पड़े हुए हैं। विदेह क्षेत्र में यह पर्वत मेरु कहलाता है, इस माल्यवान गोल पर्वत पर एक प्रासाद है जिस पर प्रभात नाम का देव निवास करता है। इस हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोग भूमि है, जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में जब तीसरा काल आता है, जैसे उस तीसरे काल में मनुष्य पशु पक्षियों की रचना है वैसी ही रचना इस हैरण्यवत क्षेत्र में सदा रहा करती है, इस कारण यह शाश्वत जघन्य भोग भूमि कहलाती है।

जम्बूद्वीपस्थ ऐरावत क्षेत्र का परिचय—हैरण्यवत क्षेत्र के बाद ऐरावत क्षेत्र आता है। ऐरावत क्षेत्र की रचना भरत क्षेत्र की रचना की तरह है। इस क्षेत्र का ऐरावत नाम क्यों पड़ा कि इस क्षेत्र में ऐरावत नाम का राजा हुआ, जैसे कि भरत क्षेत्र में भरत राजा कर्म भूमि के शुरु में हुआ था और उसके नाम पर भरत नाम रखा गया था ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र में कर्म भूमि की आदि में ऐरावत राजा हुआ जिसके द्वारा देश की रक्षा हुई, तब ऐरावत क्षेत्र नाम प्रसिद्ध हुआ। यह क्षेत्र शिखरी पर्वत और पूर्व, पश्चिम, उत्तर में समुद्र इसके मध्य में ऐरावत क्षेत्र बसा है। जैसे भरत क्षेत्र की धनुषाकार रचना है वैसा ही धनुषाकार रचना इस ऐरावत क्षेत्र की है। इस ऐरावत क्षेत्र के मध्य में भरत क्षेत्र की तरह विजयार्ध पर्वत है, जिस विजयार्ध पर्वत के होने से और शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित पुण्डरीक सरोवर से रक्त, रक्तोदा दो नदियाँ निकली हैं, इस कारण इस ऐरावत क्षेत्र के ६ भाग होते हैं। चक्रवर्ती इन ६ खण्डों का विजय कर लेता है, इसी कारण उसे चक्रवर्ती कहते हैं। अब जिसके सीमा में ७ क्षेत्रों का विभाग बना है वे पर्वत किस तरह स्थित हैं उनके वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध नील रुक्मि शिखरिणो वर्षधर पर्वताः ॥११॥

जम्बूद्वीपस्थ छह कुलाचलों का निर्देश तथा हिमवान पर्वत का कथन—उन क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व और पश्चिम की ओर लम्बे ६ वर्षधर पर्वत हैं—जिनके नाम हैं— हिमवान, महा-हिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी, इन्हें वर्षधर क्यों कहते हैं कि वर्ष नाम है क्षेत्र का और उन क्षेत्रों की जो सीमा करे, क्षेत्रों के जो निकट रहे उसे वर्षधर कहते हैं। ये समस्त पर्वत पूर्व और पश्चिम की ओर लम्बे हैं और वहाँ तक चले गए जहाँ लवण समुद्र होता है याने यह लवण समुद्र को स्पर्श करने वाला है तथा उत्तर, दक्षिण में दोनों क्षेत्र हैं इस तरह से क्षेत्रों को यह धारण किए हुये हैं याने इसके होने से क्षेत्रों का विभाग बन जाता है उन पर्वतों में से प्रथम पर्वत का नाम है हिमवान। इसका हिमवान नाम क्यों रखा ? तो ये सब नाम तो रुढ़ि से हैं, निरुक्ति से यह अर्थ है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिसके हिम हो, बर्फ हो उसे हिमवान कहते हैं, पर हिम है इस वजह से हिमवान है सो बात नहीं, किन्तु रूढ़ि विशेष से इस ही नाम वाले वे पर्वत कहलाते हैं। यह पर्वत भरत क्षेत्र और हैमवत क्षेत्र इस सीमा में स्थित है, अर्थात् इस पर्वत के दक्षिण की ओर तो भरत क्षेत्र है और उत्तर की ओर हैमवत क्षेत्र है। इस हिमवान का नाम क्षुद्र हिमवान समझना चाहिए। क्षुद्र का अर्थ है छोटा। तो यह हिमवान छोटा है यह कैसे जाना कि इसके आगे का जो कुलाचल पर्वत है उसका नाम महाहिमवान है जो हिमवान से चौगुना चौड़ा है, उस महा की अपेक्षा यह छोटे विस्तार वाला है, इस कारण इसे क्षुद्र हिमवान कहते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ हिमवान पर्वत का विस्तार—यह हिमवान पर्वत २५ योजन गहरा है अर्थात पृथ्वी के अन्दर है, १०० योजन ऊँचा है और १०५२ योजन तथा १२/१९ भाग विस्तार वाला है। चूंकि जम्बूद्वीप गोल है और उसकी वेदिका भी गोल है और उस गोल में एक किनारे दक्षिण की ओर जो ५२६ योजन बाद यह चौड़ा पर्वत पड़ा है तो इस पर्वत के दोनों कोनों का आकार उत्तर की ओर तो लम्बा बन जाता है। दक्षिण की ओर कुछ छोटा रहता है, इस कारण उत्तर की ओर जो लम्बाई है वह धनुष की डोरी की तरह बन गई है। इसको ज्या कहते हैं। तो उत्तर की तरफ इस पर्वत की ज्या २४९३२ योजन तथा १/१९ योजन भाग प्रमाण है। उसमें थोड़ा सा कम रह जाता है। जब इस पर्वत के उत्तर में एक डोरी बन गई और दक्षिण की ओर वह जोड़ा कम रह गया तो उस पर्वत में ही उस डोरी से एक किनारे से दूसरे किनारे तक यदि विस्तार देखा जाये तो वह धनुष के आकार का बन जाता है। तो इस ज्या का धनुष कितने विस्तार वाला है? २५२३० योजन तथा १ योजन के १९ भाग में से ४ भाग एवं थोड़ा सा अधिक और है। इस गोल जम्बूद्वीप में इस पर्वत के होने से दोनों किनारों पर भुजा का आकार बन जाता है। तो इस पर्वत की दोनों भुजायें याने पूर्व की ओर भुजा तथा पश्चिम की ओर भुजा, ये प्रत्येक ५३५० योजन तथा एक योजन के १९ भाग में से १५ भाग तथा कुछ अधिक आधा भाग योजन का और इतना इसका विस्तार है।

हिमवान पर्वत पर अवस्थित कूटों की रचना का संक्षिप्त परिचय—इस हिमवान पर्वत पर पूर्व दिशा की ओर सिद्धायतन नाम का कूट है। इस कूट पर अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं। इस कूट का विस्तार नीचे तो ५०० योजन है। मध्य में ३७५ योजन और ऊपर २५० योजन है। इस कूट की ऊँचाई ५०० योजन है। इस कूट के ऊपर जो अकृत्रिम जिन मन्दिर है उसकी ऊँचाई ३६ योजन है तथा उत्तर और दक्षिण की लम्बाई ५० योजन है, पूर्व और पश्चिम में विस्तार २५ योजन है। इनमें प्रवेश की जगह जो द्वार बना हुआ है वह ८ योजन ऊँचा और ४ योजन चौड़ा है, ऐसा द्वार तीन दिशाओं में है उत्तर, दक्षिण और पूर्व में। इन तीनों द्वारों पर एक-एक मुख मण्डप है। जिसकी ऊँचाई कुछ अधिक ८ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौड़ाई २५ योजन है। मुख मण्डप से आगे एक-एक प्रेक्षागृह है जो सुन्दर रचना से भरे हुए लोगों के चित्त को रमाने वाले हैं। जिसकी ऊँचाई कुछ अधिक ८ योजन लम्बाई ५० योजन और चौड़ाई भी ५० योजन है। इस प्रेक्षागृह से पहले स्तूप आदि बने हुए हैं और भीतर चैत्यालय बने हुए हैं। उन सबको घेरे हुए एक वेदिका है। जिसके चारों तरफ तोरण द्वार बने हुए हैं। ऐसे इस प्रथम हिमवान पर्वत पर सिद्धायतन कूट है। उससे पश्चिम की ओर १० कूट और हैं जिनका वर्णन सिद्धायतन कूट की तरह है। इन कूटों के ऊपर १० ही भव्य प्रासाद हैं, जिन प्रासादों पर उन-उन कूटों के नाम वाले देव और देवियाँ रहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जम्बूद्वीपस्थ महाहिमवान पर्वत का वर्णन—इस हिमवान पर्वत से आगे हैमवत क्षेत्र है। उस क्षेत्र के बाद दूसरा महाहिमवान पर्वत आता है। यह महाहिमवान इस कारण कहलाता कि इसका विस्तार हिमवान पर्वत से चौगुना है। यह पर्वत हैमवत क्षेत्र और हरी क्षेत्र का विभाग बनाने वाला है। यह हैमवत क्षेत्र से जो उत्तर की ओर है और हरिवर्ष क्षेत्र से दक्षिण की ओर है। इस पर्वत से जुदे दो विभाग बने हुए हैं। दक्षिण की ओर तो हैमवत क्षेत्र है जहां जघन्य भोगभूमि है और उत्तर की ओर हरिवर्ष क्षेत्र है जहां मध्यम भोगभूमि है। यह महाहिमवान पर्वत २०० योजन ऊँचा है, ५० योजन गहरा है अर्थात पृथ्वी के नीचे है, ४२१० योजन तथा एक योजन के १९ भागों में से १० भाग प्रमाण उसका विस्तार है। यह पर्वत भी चूंकि गोल जम्बूद्वीप के अन्दर है तो इसमें भी दोनों किनारों पर भुजायें बन जाती हैं। क्योंकि उत्तर की ओर तो इसकी लम्बाई अधिक है, दक्षिण की ओर इसकी लम्बाई कम है। इस कारण दोनों किनारों पर भुजाओं का आकार बन जाता है। इन प्रत्येक भुजाओं का विस्तार २०७६ योजन है तथा एक योजन के १९ भागों में से ९ भाग प्रमाण है एवं कुछ अधिक आधा योजन और हैं। इस पर्वत के उत्तर की ओर की लम्बाई चूंकि ज्यादह है अत-एव वह पर्वत एक स्वयं अपने में धनुषाकार बन गया है। तो उसके उत्तर तरफ की डोरी ५३९२१ योजन है तथा एक योजन के १९ भागों में से ६ भाग प्रमाण है। और उस डोरी से यह धनुष जो बन तो उस धनुष का विस्तार ५७००० योजन तथा २९३ योजन है। एवं एक योजन के १९ भागों में से १० भाग प्रमाण और है। जैसे हिमवान पर्वत के ऊपर कूट थे इसी प्रकार इस महाहिमवान पवत के ऊपर भी कूट हैं। ये कूट सब ८ हैं जिनमें प्रथम कूट का नाम सिद्धायतन कूट है। यहां अकृत्रिम जिन मन्दिर है। और जिन मन्दिर से सम्बन्धित प्रेक्षागृह आदि अनेक रचनायें हैं। जैसेकि हिमवान पर्वत पर ये सब रचनायें थीं। शेष ७ कूटों पर उस कूट के नाम वाले देव और देवियां निवास करती हैं।

जम्बूद्वीपस्थ निषध पर्वत का वर्णन—अब तीसरे पर्वत निषध का वर्णन करते हैं। निषध पर्वत हरिक्षेत्र और विदेह क्षेत्र की मर्यादा का कारणभूत है अर्थात निषध पर्वत से दक्षिण की ओर हरि क्षेत्र है और उत्तर में विदेह क्षेत्रहै। इस पर्वत का नाम निषध क्यों रखा गया ? निषध शब्द का अर्थ है—निषीधंति तस्मिन् इति निषधः, निषध करना अर्थात क्रीड़ा के लिए, मन रमाने के लिए जहां विहार हो, जिस पर देव और देवियां क्रीड़ा के लिए व विहार करती हैं उसे निषध कहते हैं। सो यद्यपि ऐसे सभी पर्वतों पर देव और देवियां क्रीड़ायें करतो हैं तो भी रूढ़ि बल से इस पर्वत का नाम निषध रखा गया है। यह निषध पर्वत ४०० योजन ऊँचा १०० योजन गहरा अर्थात पृथ्वी के अन्दर है १६८४२ योजन तथा एक योजन के १९ भागों में से दो भाग प्रमाण उसका विस्तार है। गोल जम्बू-द्वीप में यह पर्वत भी इस तरह पड़ा हुआ है कि इसका उत्तरी भाग तो लम्बा है और दक्षिणी भाग उससे कम है इस कारण से निषध पर्वत के पूर्व और पश्चिम में भुजायें बन जाती हैं। ये प्रत्येक भुजायें २०१६५ योजन हैं तथा एक योजन के १९ भागों में से दो भाग प्रमाण तथा कुछ अधिक अर्द्धयोजन और है। गोल जम्बूद्वीप में बीच से हटकर एक ओर पर्वत होने से जैसी उसकी भुजायें बनो हैं तो ये भुजायें तब ही बनी हैं जब इन पर्वतों का उत्तर में विस्तार अधिक है इस कारण निषध पर्वत के उत्तर तरफ की डोरी ९४१५६ योजन तथा एक योजन के १९ भाग में से दो भाग और है। जब इस पर्वत की ज्या बन गई तो उसका आकार बन गया। तो इस ज्या का धनुष १२४३४६ योजन तथा एक योजन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के १९ भाग में से ६ भाग प्रमाण अधिक है। वह निषध पर्वत उदयाचल और अस्ताचल का काम करता है। जब निषध पर्वत से उदय होता है तो दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र की ओर दिन होता है। जब निषध पर्वत के पश्चिम की ओर अस्त होता है तो पूर्व विदेह में दिन होता है और दक्षिण में रात्रि होती है। इसी प्रकार जब सूर्य नील पर्वत से उदित होता है तो पूव विदेह में दिन होता है और जब निषध पर्वत से उदय होता है तो वहां वाला अस्त कहलाया तब पूर्व विदेह में रात्रि होती है। इस निषध पर्वत पर ६ कूट हैं, जिनमें एक सिद्धायतन कूट है, शष देवों के निवास के लिए प्रासादों से अलंकृत है। सिद्धायतन कूट पर जो अकृत्रिम जिनमन्दिर है उसका परिमाण अन्य जिना-यतनों की तरह जानना।

जम्बूद्वीपस्थ नील रुक्मी एवं शिखरी पर्वत का वर्णन—निषध पर्वत के बाद विदेह क्षेत्र आता है। विदेह क्षेत्र के बाद फिर नील पर्वत आता है। यह नील पर्वत विदेह क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र का विभाग करता है याने नील पर्वत से दक्षिण की ओर विदेह क्षेत्र है और उत्तर की ओर रम्यक क्षेत्र है। यहां सर्वत्र दिशाओं का प्रयोग भरत क्षेत्र की अपेक्षा से किया जा रहा है, इसका नाम नील पर्वत क्यों रखा गया कि इस पर्वत का रंग नीला है। नील वर्ण के योग से इस पर्वत का नाम नील रखा गया है। यह नील पर्वत विदेह और रम्यक क्षेत्र का विभाग करने वाला है। इसका प्रमाण निषध पर्वत की तरह है, जितना लम्बा-चौड़ा पर्वत, ज्या धनुष ये सभी प्रमाण निषध पर्वत की तरह हैं, नील पवत पर ९ कूट हैं, जिनमें से एक सिद्धायतन कूट है, जिस पर अकृत्रिम जिनमन्दिर है। शेष ८ कूटों पर उस-उस नाम वाले देवों के रहने के प्रासाद हैं। नील पर्वत से उत्तर की ओर रम्यक क्षेत्र है, उसके बाद रुक्मी नाम का कुलाचल है। यह रुक्मी पर्वत रम्यक क्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्र का विभाग करने वाला है याने नील पर्वत से दक्षिण की ओर रम्यक क्षेत्र है, और उत्तर की ओर हैरण्यवत क्षेत्र है, इस पर्वत का सब कुछ प्रमाण वही प्रमाण है जो महाहिमवान पर्वत का प्रमाण है। इस पर्वत का नाम रुक्मी क्यों पड़ा? तो रुक्म के सद्भाव से इसका नाम रुक्मी हुआ है। जिसमें रुक्म हो अर्थात् चाँदी हो उसे रुक्मी कहते हैं। इस रुक्मी पर्वत पर ८ कूट हैं जिनमें एक सिद्धायतन कूट है, शेष ७ देव देवियों के रहने के स्थान हैं, सिद्धायतन कूट पर अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। शेष प्रसादों पर उस-उस कूट के नाम वाले देव देवियाँ निवास करते हैं। रुक्मी पर्वत से उत्तर में हैरण्यवत क्षेत्र है, उससे आगे शिखरी नाम का पर्वत है। यह शिखरी पर्वत हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा बताने वाला है। शिखरी पर्वत से दक्षिण की ओर हैरण्यवत क्षेत्र है और उत्तर में ऐरावत क्षेत्र है यह सब दिशाओं का विभाग भरत क्षेत्र में जैसे बताया गया है उसके अनुसार है। इस पर्वत का नाम शिखरी क्यों रखा? यह सब अर्थ शिखरी शब्द यों बताता है कि जहाँ शिखर हो अर्थात् कूट हो उसे शिखरी कहते हैं। यद्यपि कूट सभी पर्वतों पर आये हैं पर रुढ़ि बल से इस पर्वत में शिखरी शब्द का व्यवहार किया गया है। शिखरी पर्वत पर ११ कूट हैं जिनमें एक सिद्धायतन कूट है, जिस पर अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं, शष १० देवों के निवास स्थान के कूट हैं, उन कूटों पर बड़े प्रासाद बने हैं जिनमें ११ उस-उस कूट के नाम वाले देव और देवियाँ निवास करती हैं। इस प्रकार मेरु पर्वत के ७ क्षेत्रों का विभाग करने वाले ये ६ कुलाचल पर्वत हैं, इन पर्वतों का वर्ण क्या है? किस रंग का यह पर्वत है? इसका ज्ञान कराने के लिए सूत्र कहते हैं।

हेमार्जुन तपनीय वैडूर्यरजत हेममयाः ॥१२॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

जम्बूद्वीपस्थ छह कुलाचलों का वर्णन—ये हिमवान आदिक पर्वत किस रंग वाले हैं इसका उत्तर इस सूत्र में किया गया है ? हिमवान पर्वत तो स्वर्णमय है, महाहिमवान पर्वत शुक्ल वर्ण का हैं, चाँदीमय निषध पर्वत तपनीय स्वर्णमय है, जैसे तप्त स्वर्ण का विशिष्ट लाल रंग होता है उस प्रकार के रंग वाला है अथवा कैसा कि अधिक दोपहर में सूर्य का जो वर्ण होता है उस तरह का वर्ण है। नील पर्वत वैडूर्यमय है। मोर की ग्रीवा अर्थात् कंठ की जो आभा होती है उस आभा की तरह इस पर्वत का वर्ण है। रुक्मी पर्वत शुक्ल वर्ण वाला है याने रजतमय है। शिखरी पर्वत स्वर्णमय है। ये सब छहों पर्वत वनखण्डों से सहित हैं याने इन सब पर्वतों के दोनों ओर बहुत सुन्दर वनखण्ड हैं, तो जिन वनखण्डों में अनेक द्वार हैं, तोरणों से सुसज्जित हैं, वेदिका से घिरे हुये हैं और जितनी लम्बाई उन पर्वतों के किनारों पर है इतनी लम्बाई के हैं और आधे योजन के विस्तार में हैं, ऐसे वनखण्डों से सुसज्जित ये छहों कुलाचल पर्वत हैं। अब ये छहों कुलाचल पर्वत कैसे संस्थान आकार में है इसका वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

मणिविचित्र पार्श्वा उपरि मूलं च तुल्य विस्ताराः ॥१३॥

ये छहों पर्वत आकार में तो ये दीवाल के समान हैं याने जितने विस्तार में नीचे हैं उतने ही विस्तार में वे मध्य में हैं, उतने ही विस्तार में वे ऊपर हैं। इन पर्वतों का किनारा अर्थात् पर्वतों के दोनों ओर का भाग नाना वर्ण वाले विचित्र प्रभाव वाली मणियों से खचित है। पर्वत प्रायः जो देखे जाते हैं वे अटपट आकार के हुआ करते हैं और नीचे बहुत चौड़े और ऊपर अत्यन्त सकरे होते हैं, किन्तु ये समस्त कुलाचल अकृत्रिम हैं, बज्र जैसे दृढ़ हैं। इनमें परमाणुओं का आना-जाना तो सतत रहता है फिर भी इनमें हीनाधिकता या अन्य परिवर्तन नहीं हुआ करता है और इस पर बहुत अच्छे विहार स्थान रहा करते हैं और यहाँ ऊपर इस क्षेत्र की तरह बहुत विस्तार की रचना वाले हैं। तो इनका संस्थान अन्य प्रकार अटपट नहीं होता। यह बात बताने के लिये इस सूत्र में यह बात कही गई है कि इन समस्त पर्वतों का जितना मूल में विस्तार है उतना ही ऊपर में है, उतना ही मध्य का विस्तार है। यह बात भी समझने योग्य है। अच्छा ये पर्वत साधारण विस्तार वाले नहीं हैं। यह भरत क्षेत्र ५२६ ६/१९ योजन है, इससे दुगुना हिमवान पर्वत है और जितना नीचे विस्तार है उतना ही इसका ऊपरी विस्तार है, इससे दूना दूसरा क्षेत्र है जितना कि हिमवान पर्वत का विस्तार है उससे दुगुना अगले क्षेत्र का विस्तार है और उस क्षेत्र से भी दुगुना हिमवान पर्वत का विस्तार है। तो यह पर्वत एक बहुत बड़े विशाल क्षेत्र जैसे मैदान को लिए हुए है। इस पर देवी-देवताओं के विहार के सुन्दर स्थान हैं, ऐसी अकृत्रिम रचना से सुशोभित यह जम्बूद्वीप है।

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिमहापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥

जम्बूद्वीप के मध्य में जो ६ कुलाचल पर्वत कहे गए—हिमवान आदिक उन कुलाचलों पर ऊपर ठीक बीच में ६ ह्रद हैं, जिनके नाम हैं पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और और पुण्डरीक, ये जो ६ नाम कहे गये हैं ये तो कमल के पर्यायवाची शब्द हैं, पर इन छहों का नाम यह क्यों रखा गया ? तो समाधान यह है कि कमलों का वहाँ सत्त्व है तो उनके सम्बन्ध से इन छहों का नाम भी यही रखा गया है, और जैसे-जैसे वे पर्वत हैं छोटे-बड़े और वैसे ही उन पर छोटे-बड़े तालाब हैं तो ऐसे ही उनमें रहने वाले मुख्य कमलों के नाम भी इसी ढंग से रखे गये हैं। जैसे पद्म यह पहिले ह्रद पर कमल हुआ, तो अगले ह्रद पर महापद्म, वह बड़ा कमल हुआ, और छठवें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हृद का नाम है पुण्डरीक। पुण्डरीक भी कमल को कहते हैं, तो ५वें का नाम है महापुण्डरीक। तो इसी प्रकार तिगिञ्छ व केशरी (केशर वाला) ये सब कमल के ही नाम हैं, इन कमलों का सम्बन्ध होने से उनके हृदों का नाम भी यही रखा गया है। यह कमल वनस्पतिकायिक नहीं है। हैं तो पृथ्वी-काय, किन्तु इसकी रचना कमल की तरह है और उन पर प्रासाद बने हैं। उन पर देव देवियों के निवास हैं। यह सब एक अकृत्रिम अनादि पारिणामिक रचना है। अब यह बतलाते हैं कि उन हृदों में जो कमल हैं वह कमल कितना बड़ा है, और वे तालाब कितने लम्बे-चौड़े हैं। तो सबसे पहले तालाब की याने पद्म नामक हृद की बात कह रहे हैं।

प्रथमो योजन सहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कंभो हृदः ॥१५॥

पहला हृद अर्थात् पद्म सरोवर पूर्व से पश्चिम तक एक हजार योजन का तो लम्बा है उत्तर से दक्षिण तक ५०० योजन चौड़ा है, इस हृद का जो तल भाग है वह बज्रमय है। कहीं ऐसा भुरभुर पृथ्वीकाय नहीं है कि जो गले, जहाँ गड्ढा बन जाए अथवा जल उसके और नीचे चला जाए। इन हृदों का तलभाग बज्रमय हुआ करता है, इन हृदों के जो तट हैं याने चार तरफ के जो किनारे हैं वे नाना प्रकार के मणि स्वर्ण चाँदी आदिक से रचे गये हैं, विचित्र तट हैं, उन कमलों के चारों तरफ वेदिका घिरी हुई है, जिसकी लम्बाई तो सरोवर के बराबर है, जो अनेक स्वर्णमय स्तूपों से चारों तरफ अलंकृत है। तोरण लगे हुये हैं, जिन द्वारों की ऊँचाई आधा योजन है और चौड़ाई ५०० धनुष है। जिसके चारों दिशाओं के चारों वनखण्ड हैं, इन हृदों में जल गम्भीर अक्षय कभी दिखने वाले नहीं हैं, स्वच्छ हैं और ये हृद केवल एक ही मुख्य कमल वाले नहीं हैं, किन्तु अन्य भी नाना प्रकार के जलों में उत्पन्न होने वाले पुष्पों की तरह आकार वाले हैं। तो यह पद्म नामक हृद है। अब इस हृद का अवगाह कितना है? याने कितना गहरा है? उसे बताते हैं।

दश योजनावगाहः ॥१६॥

जम्बूद्वीपस्थ हिमवान पर्वत के मध्य स्थित पद्म हृद का अवगाह—पद्म हृद का अवगाह अर्थात् नीचे प्रवेश याने नीचाई १० योजन की है अर्थात् सभी तरफ १० योजन गहरे हैं, जैसे कृत्रिम तालाब जो वर्षा ऋतु में पानी से भरे हैं, अथवा झिरों से भरे हुये हों, वे किनारे पर कम गहरे और बीच में अधिक गहरे होते हैं, ऐसी उन हृदों की कम बढ़ गहराई नहीं हैं किन्तु ये सर्वत्र १० योजन गहरे पाये जाते हैं। चूँकि यह सब अकृत्रिम रचना है, अनादि से ऐसी ही बनी हुई है, उनमें अनेक परमाणु आते हैं तो अनेक परमाणु निकलते भी हैं, तिस पर भी मोटे रूप से यह रचना ज्यों की त्यों रहा करती है। तो इस प्रकार यह हृद १० योजन गहरा है। अब इस हृद के बीच में एक मुख्य कमल है, जिसके नाम से हृद का भी वही नाम पड़ा है, उस कमल का वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

पद्म हृद के मध्य में स्थित पद्म का विस्तार व परिवार - इस पद्म हृद के बीच में एक योजन प्रमाण वाला कमल है। यह कमल पृथ्वीकायिक है, इस पर प्रासाद बने हुये हैं, जिन पर कौन सी देवी रहती है? इसका वर्णन आगे के सूत्रों में आयेगा। तो यह कमल एक योजन प्रमाण हैं और इसका पत्र एक कोश लम्बा है पत्र की तरह जो एक रचना फैलती हुई चली गई है पृथ्वी में वह एक कोश लम्बी है, जिनकी कर्णिका दो कोश के विस्तार वाली है, जैसे कमल के बीच कर्णिका होती है इसी प्रकार की रचना इस पुष्कर में पायी जाती है। अब एक योजन लम्बे-चौड़े जल तल से दो कोश

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊँचा इन कमलों का नाल है, जैसे कमल में डंडी होती है हरी और ऊपर कमल फैला होता है, ठीक इस प्रकार से यहाँ रचना पायी जाती है, तो इसकी नाल दो कोश ऊँचा है, और उतने ही विस्तार में पत्रों का समूह है। इसका मूल बज्रमय है और अरिष्ट मणिका कंद बना हुआ है याने जब कोई कमल सरोवर में होता है तो नीचे कंद होता है और उस कंद से अनेक डालें भी निकलती हैं जिन्हें मृडाल कहते हैं और वे ऊपर नाल से निकलकर कमल हुआ करती हैं और यही रचना इस ढंग से यहाँ पायी जा रही है, जिसका कंद तो अरिष्ट मणियों का है और जिसके मृडाल रजत और मणियों के बने हुए हैं, जिनकी डंडी वैडूर्यमणि की बनी हुई है, इस कमल का बाह्य पत्र तपे हुये स्वर्णमय है, जिसके भीतर का तल भी स्वर्णमय है जिसका केसर यह कमल की कर्णिकाओं के बीच में पतले-पतले बहुत से केसर होते हैं तो इस अकृत्रिम पुष्कर में भी तपे हुये स्वर्ण के केसर होते हैं। नाना मणियों से चित्र विचित्र स्वर्णमयी कणिका है। ऐसा यह कमल १०८ अन्य कमलों के परिवार सहित है अर्थात् यहाँ १०८ भाँति के कमल हैं जिनकी ऊँचाई इस मुख्य कमल से आधी है। इन कमलों से पूरब, पश्चिमोत्तर इन तीन दिशाओं में श्री नाम की देवी के सामान्य देवों के चार हजार पद्म और हैं, इस ह्रद में जो मुख्य कमल है उस कमल पर श्री नाम की देवी का निवास है और इस ह्रद में श्री देवी के सामानिक देव रहा करते हैं। दक्षिण पूर्व दिशा में श्री देवी के आभ्यंतर परिषद् के देव हैं, जिनके ३२ हजार कमल हैं। ये सब कमल पृथ्वीकायिक हैं। इन पर इन देवों के रमणीक महल बने हुए हैं। दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के देवों के निवास हैं, इनके ४० हजार कमल बने हुए हैं। दक्षिण, पश्चिम दिशा में बाह्य परिषद् के देवों के कमल हैं। ये कमल ४८ हजार हैं। पश्चिम दिशा में ७ सेना प्रधान के ७ कमल हैं। चारों महादिशाओं में आत्मरक्ष देवों के १६ हजार कमल हैं। ये सभी परिवार के कमल उस मुख्य कमल से आधी ऊँचाई वाले हैं, ये सब १,४०,१५० (एक लाख चालीस हजार एक सौ पचास) हैं। इस तरह अनेक कमलों में बने हुए प्रासादों में नाना प्रकार के देवों के निवास हैं, उनके बीच में शोभा को प्राप्त मुख्य कमल है जिस पर श्री नाम की देवी का निवास है। अब ऐसे जो ह्रद हैं और कमल हैं उनकी लम्बाई, चौड़ाई आदिक बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।१८।।

पद्म महापद्म व तिगिच्छ ह्रदों व पुष्करों का वर्णन—अन्य ह्रदों में जो कमल हैं और वे ह्रद उससे दूने-दूने विस्तार वाले हैं, जितना विस्तार पद्म ह्रद का है उससे दूना विस्तार महापद्म का है, उससे दूना विस्तार तिगिच्छ ह्रद का है, और जैसे ही इस दक्षिण तरफ पहले से दूने-दूने विस्तार के कमल हैं उत्तर दिशा में ऐसे ही हैं। जो छठा ह्रद है उत्तर की ओर जिसका नाम है पुण्डरीक, उससे दक्षिण की ओर दूने-दूने विस्तार वाले ह्रद हैं अर्थात् पुण्डरीक, उससे दूना विस्तार है महापुण्डरीक का, उससे दूना विस्तार है केसरी का। यहां सूत्र में जो द्विगुणाः बहुवचन कहा गया उससे सिद्ध है कि अनेक ह्रद और अनेक कमलों का वर्णन इसमें किया जा रहा है। केवल एक ही ह्रद या एक ही पुष्कर ऐसा दो को मिलाकर नहीं कहा जा रहा, और इसी कारण द्विगुणौ, ऐसा द्विवचन का शब्द नहीं दिया गया। अब इस विस्तार का विवरण इस प्रकार है कि महाहिमवान पर्वत के ऊपर ठीक बीचोबीच महापद्म नाम का ह्रद है जो दो हजार योजन लम्बा है और एक हजार योजन चौड़ा है और गहरा २० योजन है इस महापद्म ह्रद के बीच में जल तल से दो कोश ऊंचा एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

योजन के विस्तार वाले पत्रों से घिरा हुआ दो कोश लम्बे जिसके पत्र हैं और जिसकी कर्णिका एक योजन लम्बी है और इस कारण जिसका विस्तार २ हजार योजन हो गया है ऐसा कमल है। यह कमल बज्रवत् अभेद्य है ठोस पृथ्वीकायिक रचना है। अनादि से अकृत्रिम इसी प्रकार चली आयी है, जिन पर ह्रीं नाम की देवी का प्रासाद है। इसके चारों ओर अनेक कमल हैं जिस पर भव्य प्रासाद हैं, जहाँ सामानिक आदिक अनेक देव निवास करते हैं। ये सभी कमल, प्रासाद, देव आदिक ह्रीं नाम की देवी के परिकर के रूप में हैं। इस ह्रीं देवी के निवास का जो कमल है उसके परिवार के कमलों की संख्या पद्म ह्रद में बने हुये परिवार की तरह है। महापद्म ह्रद से उत्तर दिशा में आगे बढ़कर जो निषध पर्वत आता है उस निषध पर्वत के ऊपर ठीक बीच में तिगिन्छ नाम का ह्रद है, जिसकी लम्बाई ४ हजार योजन है, चौड़ाई दो हजार योजन है, गहराई ४० योजन है। इस ह्रद के ठीक बीच में जल तल से दो कोश ऊंचा कमल है जो दो योजन के विस्तार वाले पत्रों से भरा हुआ है, क्योंकि उन पत्रों का आयाम ही एक योजन है। जैसे कमल की कर्णिका दो योजन लम्बी है, चार योजन लम्बाई-चौड़ाई वाला है, ऐसा यह पुष्कर यह तीसरे ह्रद के बीच में रहने वाला है। इसके परिवार के कमलों की संख्या पहले बताये हुए की तरह है, इस तरह दक्षिण दिशा में प्रथम ह्रद से लेकर उत्तर की ओर रहने वाले दो ह्रदों समेत तीन ह्रदों का वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ केशरी, महापुण्डरीक व पुण्डरीक ह्रद व पुष्करों का वर्णन—अब आगे के ह्रदों की लम्बाई-चौड़ाई इन ह्रदों की तरह है, क्योंकि गोल जम्बूद्वीप में जो बीचोबीच अन्दर से ६ पर्वत पड़े हुए हैं तो जितनी रचना इस दक्षिण के भाग में है ठीक इसी प्रकार की रचना उत्तर के आगे भाग में है। तो निषध पर्वत के बाद उत्तर की ओर नील पर्वत आता है, उसके ऊपर ठीक बीच में केसरी नाम का ह्रद है और उसमें कमल है, इन सबका विस्तार तिगिन्छ ह्रद की तरह है, और निषध पर्वत के कमल पर तो धृति नाम की देवी का निवास है और केसरी ह्रद के कमल पर कीर्ति नामक देवी का निवाम है उसके अनेक परिवार के कमल सब कुछ रचना तीसरे सरोवर की तरह है। उत्तर की ओर आगे चलकर ५ वाँ कुलाचल पर्वत है। रुक्मी या रुक्मी पर्वत के ऊपर ठीक बीचोबीच महापुण्डरीक ह्रद हैं, जिसका सब कुछ विस्तार महापद्म ह्रद की तरह है अर्थात् ५ वें ह्रद और उस ह्रद में रहने वाले कमल का सब कुछ वर्णन दूसरे ह्रद के तुल्य है। इसमें बुद्धि नामक देवी का निवास है, अन्तिम कुलाचल शिखरी पर्वत है उसके उत्तर ठीक बीचोबीच में पुण्डरीक नामक ह्रद है। उसका विस्तार पद्म ह्रद की तरह है और उसमें रहने वाले कमल आदिक का भी विस्तार संख्या पद्म ह्रद के कमल की तरह है।

अकृत्रिम रचना की शोभा की असंदिग्धता—यहाँ एक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा रख रहा है कि इस अध्याय में जो द्वीप समुद्र का इतना वर्णन किया जा रहा है तो यह वर्णन एक सिलसिले का है और बड़ी शोभा वाला है। वर्णन के असुसार नक्शा बनाया जाए तो बहुत सुन्दर लगता है ' तो क्या अकृत्रिम रचना इस तरह की सही-सही नाप-तौल की और सुन्दर हुआ करती है ? जो सही नाप तौल और शोभा वाली रचना है वह तो की हुई ही हो सकती है। इस जिज्ञासा के समाधान में कहते हैं कि कृत्रिम रचना में जो शोभा हो सकती है उससे कई गुणा शोभा अकृत्रिम रचना में होती है। जैसे कहीं-कहीं पत्थरों पर फूल का चित्र आ जाये और बड़े नाप-तौल ढंग से एक समान आदिक अनेक बातें देखी जाती हैं तो जो अकृत्रिम रचना है उसमें प्रकृत्या सुना जाता है अनेक देशों में केवल पत्थर

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो ऐसे फूल के आकार के बनते हैं कि जिनको जरा भी बनाना नहीं पड़ता हैं और बड़ी शोभा वाले होते हैं। तो जो द्वीप समुद्र की रचना है, जिसकी इतनी अद्‌भुत शोभा है वह तो अकृत्रिम में ही बन सकती है, कृत्रिम इतना सुन्दर नहीं हो सकता।

द्वीप समुद्र आदि की अकृत्रिमता के विषय में एक आशंका—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि ये सब क्या, कोई भी जगत का पदार्थ अकृत्रिम हो ही नहीं सकता। किसी न किसी के द्वारा बनाया हुआ हुआ करता है अर्थात् ये द्वीपादिक, यह पृथ्वी भी सब कुछ, यह लोक सारा जगत किसी एक ईश्वर का बनाया हुआ है क्योंकि इसमें आकार पाया जा रहा है। जिन चीजों में आकार पाया जाता है वे किसी के द्वारा बनाई गई होती हैं, और जैसे घड़ा कपड़ा ईंट ये सब किसी के बनाये हुये हैं किन्तु पृथ्वी द्वीप पर्वत जैसे विशाल पदार्थ जिनका बनाने वाला कोई सामान्य पुरुष तो होता नहीं और चूँकि इनमें आकार है इस कारण यह सिद्ध होता है कि यह ईश्वर के द्वारा, एक किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है और जब सब कुछ ईश्वर के द्वारा किया गया है तो इसे अकृत्रिम बताना, और अकृत्रिम बताकर इसकी शोभा बताना एक वचनमात्र है। यह कोई अकृत्रिम नहीं है। जगत के सभी पदार्थ कृत्रिम हैं। जीव हो, अजीव हो, जो भी वस्तु है चेतन-अचेतन, चर-अचर, सारा जगत एक बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है।

उक्त शंका के समाधान में कहते हैं कि ईश्वर के द्वारा यह लोक बना ऐसी आशंका रखने वाले यह तो बताये कि जिस ईश्वर के द्वारा यह सब कुछ बना वह ईश्वर देह सहित है, या देह रहित है। अगर कहो कि देह सहित है तो देह भी तो आकार वाला है, उस ईश्वर के देह को किसने बनाया? अगर कहो कि उस ईश्वर के देह को दूसरे ईश्वर ने बनाया तो वह भी तो देह वाला है, उसे किसने बनाया? इस तरह तो अनेक ईश्वर मानकर भी व्यवस्था नहीं बन सकती। तो देखो कि ईश्वर का देह आकार वाला है मगर वह किसी के द्वारा बनाया गया नहीं है। यह ही तो कहना पड़ेगा। तो इस हेतु में निर्दोषता तो न रही कि जो-जो आकार वाली चीज हैं वह किसी न किसी के द्वारा बनाई हुई हैं। आकारवान देह भी है ईश्वर का मगर उसे मानेंगे कि अन्य-अन्य ईश्वर ने बनाया तो ईश्वर में अनवस्था हो जाएगी। यदि यों मानेंगे कि वह देह किसी के द्वारा बनाया गया नहीं है तो जैसे ईश्वर का देह किसी के द्वारा बनाया गया नहीं है ऐसे ही जगत के सभी पदार्थ किसी के द्वारा बनाये गये नहीं, ऐसा मानने में क्या आपत्ति? यदि शंकाकार यह कहे कि ईश्वर के देह नहीं है, वह तो निर्देह होता है तो यह भी बात यों नहीं बनती कि जो-जो जीव निर्देह होते हैं, देह शून्य हैं उनके द्वारा किसी चीज की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। वे किसी पदार्थ के निमित्त कारण नहीं बन सकते हैं। जैसे मुक्तात्मा जो जीव मुक्त हो गए हैं, देह जिनके नहीं रहा है वे मुक्तात्मा किसी को बना नहीं सकते, जगत की किसी चीज के निमित्त कारण नहीं है।

परमात्मा के परकर्तृत्व के दोष सिद्धान्त की मीमांसा—शंकाकार का सिद्धान्त यह कह रहा है कि ईश्वर एक है और वह अनादि से अनन्त काल तक है, उसके द्वारा तो जगत रचा जाता है और जब कभी कोई जीव तपश्चरण ज्ञान करके मुक्त हो जाए, कर्मों से छूट जाए, जन्म-मरण से रहित हो जाए तो वह कहलाता है मुक्तात्मा। मुक्तात्मा ईश्वर से बड़ा नहीं माना गया। खैर मुक्तात्माओं के देह तो नहीं है, जब देह नहीं है तो वे सृष्टि के कर्त्ता भी नहीं बन पाते। तो जिसके देह नहीं है वह सृष्टि का करने वाला कैसे हो सकता? तो ईश्वर को निर्देह मानने पर भी सृष्टिकर्त्तापन की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्धि नहीं हो सकती। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि ईश्वर निर्देह है तो भी चूंकि वह नित्य ज्ञान वाला है, उसका ज्ञान सदा रहता है, सर्वज्ञ है तो नित्य ज्ञान वाला होने से वह जगत की सृष्टि का कारण बनता है। जो कुछ जानता ही नहीं, वह वस्तु कैसे बनाएगा ? कुम्हार के सब पता है कि मिट्टी से और इस-इस प्रकार के साधन से घड़ा बनाया जाता तो वह घड़ा बनाता है। तो जिसको कुछ पता हो, ज्ञान हो वही तो कार्य कर सकता है। तो ईश्वर भी सबका ज्ञाता है इस कारण वह सृष्टि कर सकता है। ऐसा कहने वाले शंकाकार जरा विचार तो करें कि इसमें अन्वय व्यतिरेक भी घटित होता है या नहीं ? यदि शंकाकार यह उत्तर दे कि अन्वय तो घटित हो जाता है, नित्य ज्ञान वाला है इसलिए वह सृष्टि का करने वाला है और व्यतिरेक माने इससे भिन्न बात सिद्ध होती नहीं, क्योंकि हम आप जगत के जो जीव हैं वे नित्य ज्ञान वाले नहीं हैं इस कारण ये सृष्टि के कर सकने वाले नहीं हैं। नित्य ज्ञान वाला ईश्वर है तो ऐसी शंका और शंका के समर्थन में समाधान करने वाला जरा सोचे तो सही कि हम आप जगत में जितने भी प्राणी हैं क्या इनके नित्य ज्ञान नहीं है ? हम आप सब इन जीवों के प्रतिक्षण ज्ञान नये-नये होते तो जाते हैं मगर संतान उसकी, सामान्य स्वभाव की दृष्टि से देखें तो ज्ञान नित्य है, क्योंकि ज्ञान सामान्य से रहित कोई भी जीव नहीं है। अगर ज्ञान सामान्य न हो तो जानने का व्यापार कैसे बन सकेगा ! जब कोई चीज सदा काल है तो उसे ही की तो अवस्था बनती है, अर्थात् हम सब जीवों के भी ज्ञान में नित्यपना है लेकिन सब सृष्टि के करने वाले नहीं हैं, तो जिसका ज्ञान नित्य है वह सृष्टि को करे यह कोई युक्ति सिद्ध बात न बनी तो भगवान ईश्वर का ज्ञान नित्य है इससे सृष्टिकर्त्ता है, यह बात खण्डित हो जाती है।

सभी जीवों के ज्ञान में नित्यत्व और अनित्यत्व के दर्शन—दूसरी बात यह है कि कोई भी ज्ञान सर्वथा नित्य हो ही नहीं हो सकता। ईश्वर का ज्ञान हो तो भी या संसारी प्राणी का ज्ञान हो तो भी, कोई भी ज्ञान सर्वथा नित्य नहीं होता क्योंकि जानन भी रहे और नित्यपना भी रहे ये दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। यदि शंकाकार यह कहे कि दोनों बातें एक साथ ईश्वर के ज्ञान में तो हो जाती हैं, क्योंकि ईश्वर इनसे विलक्षण चीज है, जो बात इसमें पायी जाती है उससे हम ईश्वर को भी वैसा ही मानें तो कैसे हो सकता ? वह तो एक विशिष्ट जीव है आत्मा है वह उतना ही ज्ञान है, ऐसा जो अनित्य होता है, पर ईश्वर का ज्ञान नित्य है इसलिए समाधान देने वाला शंकाकार अगर थोड़ा भी विचार करें तो यहाँ समझ में आ सकेगा कि ज्ञान सर्वथा नित्य नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान करने वाला सर्वथा नित्य है तो ज्ञान का फल क्या रहा ? सर्वथा अपरिणामी नित्य। नित्य में कोई अवस्था ही नहीं बनती। उन अवस्थाओं से काम भी न बन सकेगा, अज्ञान निवृत्ति भी न हो सकेगी। तो नित्य ज्ञान में फल नहीं हो सकता, इस कारण से ईश्वर का ज्ञान नित्य माना नहीं जा सकता। फल रहित ज्ञान-ज्ञान ही नहीं हुआ करता और अगर मानें कि ईश्वर के ज्ञान का भी फल है तो फल अनित्य हो गया। तो एक ही ज्ञान में नित्यपना और अनित्यपना एकान्तवादियों के कैसे सम्भव हो सकता ? अगर उस ही ज्ञान का फल मानते तो नित्य न रहेगा। अगर कहो कि फल वाला ज्ञान दूसरा है और यह नित्य ज्ञान यह दूसरी चीज है तो क्या ऐसा एक आत्मा में क्या भिन्न-भिन्न धर्म वाले दो ज्ञान हुआ करते हैं ? फल तो प्रमाण हुआ करता है और प्रमाण एक कार्य है, ज्ञान की अवस्था है। तो जब फल हो गया ज्ञान का, तो वह ज्ञान नित्य कैसे रह सकेगा ? अगर शंकाकार यह कहे कि प्रमाण और फल दोनों रूप ईश्वर का ज्ञान होता है तो यह बात तो एकदम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यों युक्त है कि एक ही पदार्थ में स्वात्मा में क्रिया का विरोध माना गया है अर्थात् एक ही पदार्थ अपने आपको कैसे उत्पन्न करे ? कोई पदार्थ किसी दूसरे को ही तो करेगा। खुद-खुद को क्या उत्पन्न करे ? अगर कहो कि ईश्वर का ज्ञान प्रमाणभूत है और यह ज्ञान नित्य है किन्तु फलभूत जो ज्ञान है वही मात्र अनित्य है तब तो ये दो ज्ञान मानने पड़े न ईश्वर को। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन हीं क्या ? जीव है, ज्ञानस्वरूप है, बस उस ज्ञान की अवस्था होती है। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन नहीं है, इससे यह बात भी अयुक्त है, तो यों जो शरीर रहित देह हैं उसकी भी सृष्टि की रचना नहीं बन सकती।

लोक में निमित्त नैमित्तिक योग—अगर शंकाकार यह कहे कि जैसे समय है वह तो सृष्टि का कारण है, बताया ही गया है जैन शासन में भी कि परिणमन का कारण काल है, समय है। तो समय में कहीं देह है क्या ? तो जैसे काल द्रव्य में देह नहीं है फिर भी कार्य की उत्पत्ति में कारण बन जाता है तो इसी प्रकार वह निर्देह ईश्वर भी निमित्त बन बैठेगा, सो यह बात कहना यों युक्त नहीं कि काल द्रव्य कहीं व्यापार करके पदार्थों को नहीं बनाता। पदार्थ सबके सब स्वयं सिद्ध हैं। अनादि अनन्त हैं और उनमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य का स्वभाव पड़ा हुआ है। सभी पदार्थ स्वयं बनते हैं, बिगड़ते हैं और बने रहते हैं। उनके इस काल के प्रयोग में काल द्रव्यमात्र एक उदासीन निमित्त है। सो ऐसा उदासीन निमित्त रूप किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता ही नहीं। यहाँ तो बिधि विधान दृष्टगत हो रहा। सो ईश्वर इस द्वीप समुद्र की रचना करने वाला नहीं है।

सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा का परिशेष व उपसंहार—यह ईश्वर चूंकि देह रहित है और देह रहित होने के कारण जैसे मुक्त आत्माओं को सर्वज्ञ नहीं माना शंकाकार का तो देह रहित ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जैसे मुक्त आत्माओं को अज्ञ माना है देह न होने के कारण तो देह न होने के कारण यह ईश्वर भी अज्ञ बन जाएगा और जो अज्ञ है वह सृष्टिकर्ता कैसे हो सकता ? अगर अज्ञानी भी सृष्टिकर्त्ता बन जाये तो जगत के सभी जीव सृष्टिकर्त्ता बन जायेंगे। और स्पष्ट बात तो यह है कि जैसे ये घट-पट आदिक अनेक पदार्थों में रचना होती है तो कोई देह वाला बुद्धिमान पुरुष है तो इन रचनाओं का कारण बनता है। कुम्हार ने घट बनाया तो घट का कर्त्ता कुम्हार, वह भी तो देह वाला ही है। देह रहित कोई भी किसी पदार्थ की सृष्टि का कर्त्ता नहीं हो सकता और फिर कहो कि ये सब चीजें बुद्धिमानों के द्वारा प्रकट की गई है उत्तर ठीक है—माना जा सकता मगर बुद्धिमान तो सभी जीव हैं। सभी के अन्दर ज्ञान है, जितना ज्ञान है, जहाँ जो जीव है वह अपने ज्ञान के अनुसार उन चीजों की रचना कर लेता है। वस्तुतः कोई भी पदार्थ किसी भी दूसरे पदार्थ की रचना नहीं करता, किन्तु उपादान में ही ऐसी कला होती है कि वह अनुकूल निमित्त को पाकर स्वयं अपनी परिणति से अनुरूप प्रभाव बना लेता है, तो केवल बुद्धिमानों के द्वारा रचा गया है इतनी ही बात रखी जाए तो फिर अनन्त जीवों के द्वारा रचा गया ऐसा मान लेना चाहिए। यदि शंकाकार यह कहे कि जो पृथ्वी, पर्वत आदिक हैं यही तो ईश्वर की मूर्ति हैं याने यह ही सब ईश्वर का देह है और उसको ईश्वर ने रचा है तो ऐसा मानने पर तो यही बात सिद्ध हुई कि जिस जिस जीव को जो-जो देह मिला है जिस जिस प्राणी को जो-जो भी शरीर मिला है बस उसका कर्त्ता वह प्राणी है, क्योंकि जगत में जो कुछ भी दिख रहा है वह सब जीवों का शरीर है। लोहा, पत्थर, लकड़ी ये भी तो जीव के शरीर हैं। याने उनमें जीव पहले था। जीव निकल गया, केवल शरीर रह गया। तो सभी जो कुछ नजर आ रहे हैं वे जीव के देह हैं और उन जीवों ने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उन्हें स्वीकार किया है और जिसे विधि विधान से वह जीव का निमित्त पाकर बनता है सो बन गया है ? अब इनमें से अलग से एक ईश्वर सृष्टिकर्ता के मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

समस्त पदार्थों की सहज सिद्धता एवं उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—युक्ति अनुभव सभी यह सिद्ध करते हैं कि जगत में अनन्त पदार्थ हैं और वे पदार्थ सभी सत् हैं तो सत् हैं इस नाते से वे पदार्थ अपना उत्पाद व्यय करते हुए शाश्वत रहा करते हैं। यही बात चाहे कृत्रिम पदार्थ हो चाहे अकृत्रिम, सबमें उत्पादव्यय ध्रौव्य व्यवस्था है। अन्तर इतना है कि यहां के पृथ्वी, पर्वत आदिक परमाणुओं का जाना और आना लगा हुआ है लेकिन वे इतने दृढ़ नहीं हैं कि इस आने जाने के प्रभाव से कहीं उसका विघटन नहीं हो जावे। वे पदार्थ तो अकृत्रिम कहे गये हैं और जो किसी के प्रयोग से बनाये गये हैं वे कृत्रिम कहे जाते हैं । तो ये सब द्वीप समुद्र ये अकृत्रिम रचनायें हैं। अनादि काल से चली आई हैं, अनन्त काल तक चलती रहेंगा। इनमें यद्यपि अनेक परमाणुओं का आना और बिछुड़ना होता रहता है किंतु ये स्वयं हा इतने दृढ़ हैं कि इस आने जाने के कारण उनमें घटाव बढ़ाव नहीं होता। ऐसे ये असंख्याते द्वीप समुद्र हैं, जिनमें से जम्बूद्वीप का वर्णन चल रहा है कि जम्बूद्वीप में ७ क्षेत्र हैं औरउन क्षेत्रों का विभाग करने वाले ६ कुलाचल पर्वत हैं। इन ६ पर्वतों के ठीक मध्य मेंएक एक ह्रद है। जिसका विस्तार सब कुछ पूर्व सूत्रों में बताया गया है। यहां बतला रहे हैं कि उन ह्रदों में निवास कौन करते हैं? उन ह्रदों में जो कमल बने हैं उन कमलों पर जो प्रासाद हैं उन प्रासादों में रहता कौन है ? यह इस सूत्र में बता रहे हैं। ✓

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः।
पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषित्काः ॥१९॥

जम्बूद्वीप के कुलाचल पर्वत पर जो ६ तालाब हैं उनमें जो मुख्य कमल है वहां ६ देवियां रहती हैं। जिनका नाम है—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी। इन देवियों की आयु एक पल्य प्रमाण है और इन देवियों के आस पास सामानिक और पारिषित्क जाति के देवों के निवास स्थान हैं। ये सामानिक और पारिषित्क देव मानों देवियों के परिवारस्वरूप हैं। सामानिक का तो अर्थ है जो समान स्थान में हो। ये छहों देवियाँ कुमारी हैं, तो उनके ये सामानिक भाई बन्धु जैसे शोभा को प्राप्त होते हैं, सामानिक और पारिषित्क इन दोनों में आदरणोय सामानिक हैं। उच्च पद सामानिक का है। तो ये सभी देव उन तालाबों के अन्दर रहने वाले जो कमल हैं उन पर बने हुए महलों में रहते हैं। इस प्रकार ६ कुलाचलों का वर्णन यहां तक समाप्त हुआ। अब यहां बतला रहे हैं कि जम्बूद्वीप में जो क्षेत्र हैं उन क्षेत्रों में भी जो कुछ दिशाओं का विभाग बना है वह किन नदियों के रहने से बना है उसका उत्तर देते हैं।

गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांता-
सुवर्णरुप्यकूलारक्तारक्तोदासरितस्यन्मध्यगाः ॥२०॥

उन क्षेत्रों के बीच में से ये नदियां निकली हैं। भरत क्षेत्र में से गंगा और सिंधु नदी हैं। हैमवत क्षेत्र में रोहित और रोहितास्या, हरिक्षेत्र में हरित और हरिकान्ता हैं। विदेह क्षेत्र में सीता और सीतोदा नदी हैं। रम्यक क्षेत्र में नारी और नरकान्ता नदी हैं। हैरण्यवत क्षेत्र में स्वर्ण कूला और रूप्यकेला नदी हैं। ऐरावत क्षेत्र में रक्ता और रक्तोदा नदी निकलो हैं। ये नदियां निकली तो उन ह्रदों से हैं जो कुलाचल पर्वत पर अवस्थित हैं। अब यहाँ यह समझना कि तालाब तो ६ हैं और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नदियाँ १४ हैं तो १-१ तालाब से दो-दो नदियाँ निकलेंगी तो १२ नदियाँ होनी चाहिये लेकिन १४ नदी हैं। तो इनमें से किसी तालाबमें एक-एक नदी और अतिरिक्त निकलती है। सो पहले कुलाचल पर्वत पर अवस्थित तालाब से गंगा सिंधु तो निकली ही थीं। रोहितास्या भी निकली है। यह नदी पद्महृद के उत्तर की ओर से निकल कर हैमवत क्षेत्र में गई है। इसी प्रकार अन्तिम कुलाचल जो सिखरी नाम का है उस पर जो पुण्डरीक तालाब है उससे दो नदियाँ रक्ता और रक्तोदा तो निकलती ही हैं। पर एक रूप्यकूला नदी और निकली है। इस तरह ७ क्षेत्रों में दो दो नदियाँ निकली हुई हैं अब यह बतलाते हैं कि ये नदियाँ किस दिशा की ओर गई हैं।

द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगाः ॥२१॥

पूर्वगामिनी नदियां—जैसे ऊपर के सूत्र में नदियों के नाम दिये हुए हैं उनमें से दो दो का एक जोड़ा मान लिया जाय तो उनमें यह विभाग बनता है कि पहली नदी पूर्व दिशा की ओर बही है। जैसे भरतक्षेत्रमें पद्महृद से गंगा नदी निकली है तो वह कुछदक्षिणकी ओर आकरपूर्व की ओर बह गई है और वह लवण समुद्र के तट पर मिलगई है, इसी प्रकार दूसरा युगल जो रोहित रोहितास्या नदी का है उसमें से रोहितास्या नदी पद्महृद से उत्तर की ओर से निकली है मगर थोड़ा दूर जाकर एक पर्वत को घेरकर फिर पूर्व की ओर बह गई है। गे सभी नदियां लवणसमुद्र में जाकर गिरती हैं। इस प्रकार ये नदियां मूल में तो बहुत सिकुड़ी हुई हैं। थोड़ा क्षेत्र घेरे हैं और जैसे जैसे इनका प्रवाह आगे चलता गया वैसे ही वैसे विस्तार भी बढ़ता जाता है। इसी प्रकार दूसरा कुलाचल जो हिमवान पर्वत है उस पर महापद्म नाम का तालाब है। जो उसके दक्षिण की ओर से रोहित नदी निकली है। और भी कुछ दूर चलकर एक गोल पर्वत को थोड़ा घेरकर फिर पश्चिम की ओर चली गई है। इसके बाद तीसरा कुलाचल निषध नाम का है, उस पर तिगिंध नाम का तालाब है, जिसके दक्षिण की ओर से हरीकांता नाम की नदी निकनी है और वह पर्वत को थोड़ा घेर कर पूर्व की ओर बह गई है। इसी प्रकार अन्य कुलाचलों में भी, क्षेत्रों में भी इसी ढंग से नदियों का प्रवाह जानना। अब शेष नदियाँ किस ओर गई हैं यह बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

उन दो दो नदियों में से पहली-पहली नदी तो पूर्व को ओर गई है, यह बात ऊपर के सूत्र में कही गई थी, अब शेष की जो नदियां हैं वे पश्चिम समुद्र में जाकर मिली हैं।

अब उन नदियों का परिवार बताने के लिये सूत्र कहते हैं—

चतुर्दशनदी सहस्रपरि वृत्ता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥२३॥

गंगा सिंधु आदिक नदियां १४ हजार नदियों से भिड़ी हुई हैं याने गंगा नदी में १४ हजार नदियां और मिली हैं। इसी प्रकार सिंधु नदी में भी १४ हजार नदियां और मिली हैं। इससे आगे रोहित और रोहितास्या नदी में २८ हजार नदियां मिली हैं, इसके आगे हरी हरीकान्ता नामक नदियों में ५६-५६ हजार नदियां मिली हैं। सीता और सीतोदा नामक नदी में प्रत्येक में ११२ नदियां और मिली हैं। इस परिवार की नदियों के मिलने से इसके आगे-आगे विस्तार बढ़ता जाता है। अब भरत क्षेत्र का विस्तार बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

भरतः षड्विंशति पंचयोजनशतविस्तारपटचैकोन विंशति भागाययोजनस्य ॥२४॥

भरत क्षेत्र का विस्तार है ५२६ योजन और एक योजन के १६ भागों में से ६ भाग प्रमाण।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इतना विस्तार होने का कारण यह है कि जम्बूद्वीप है एक लाख योजन की सूची में और उसमें ७ क्षेत्र और ६ कुलाचल पर्वत हैं। विदेह क्षेत्र तक दक्षिण की ओर तीन क्षेत्र और तीन कुलाचल पर्वत हैं। फिर विदेह क्षेत्र है। फिर उसके बाद तीन कुलाचल तीन क्षेत्र हैं। इसका विस्तार है जितना भरत क्षेत्र का विस्तार है उससे दूना पहले क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे पर्वत का, उससे दूना तीसरे क्षेत्र का, और उससे दूना तीसरे पर्वत का। तो इस प्रकार इससे दूना विदेह क्षेत्र है बाद में जितना दक्षिण के भरत क्षेत्र का विस्तार है उतना ही उत्तर के क्षेत्र पर्वत का विस्तार है। तब भरत क्षेत्र का माप एक भाग रख लिया जाय तो दो भाग हुए और पर्वत के ४ भाग हुए दूसरे क्षेत्र के, ८ भाग हुए दूसरे पर्वत के, १६ भाग हुए तीसरे क्षेत्र के और ३२ भाग हुए तीसरे पर्वत के, इस तरह इनका योग हुआ १+२+४+८+१६+३२, इनका योग हुआ ६३ भाग। इतना ही ६३ भाग उत्तर में है और ६४ भाग विदेह क्षेत्र है। तब ६३+६३+६४। ये सब मिलकर १९० हुए। अब १ लाख में १९० का भाग दिया जाय तो लब्ध होता है ५२६ ६/१९ योजन। वही विस्तार इस सूत्र में कहा गया है। अब इसके आगे के क्षेत्र और पर्वत कितने विस्तार वाले हैं, यह बता रहे हैं।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षाविदेहांता ॥२५॥

जितना विस्तार भरत क्षेत्र का कहा गया है उससे दूने विस्तार वाले क्षेत्र और पर्वत विदेह पर्यन्त जानना चाहिये। इस क्षेत्र का विदेह नाम क्यों रखा कि भव्य पुरुष मुनिव्रत धारण करके इस क्षेत्र से सदा मोक्ष जा सकते हैं। जैसे भरत और ऐरावत क्षेत्र में सभी समय मोक्ष नहीं होता है। जब उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी काल का चौथा काल आता है तब ही से मुक्ति होती है। यही कारण है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में तो चतुर्थकाल में ही तीर्थंकर हुआ करते हैं किंतु विदेह क्षेत्र में तो सदा तीर्थंकर हो सकते हैं। अब विदेह के उत्तर की ओर रहने वाले क्षेत्र और पर्वत के विस्तार कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

उत्तरादक्षिणतुल्याः ॥२६॥

विदेह क्षेत्र की उत्तर दिशा की ओर जितने क्षेत्र और पर्वत हैं उनका विस्तार उतना है जितना कि दक्षिण दिश की ओर अवस्थित क्षेत्र और पर्वत का है। इसी प्रकार हर तरह की रचना भी प्राणियों की ऊँचाई या उनका सुख, उनकी आयु, वे सब भी दक्षिण में रहने वाले क्षेत्र और पर्वतों की भाँति हैं। ऐसी रचना देखकर ही लोग शंका किया करते हैं कि इतनी सुन्दर रचना अकृत्रिम रचना में कैसे हो सकती है किन्तु यह अनेक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कृत्रिम में जितनी शोभा नहीं होती उतनी शोभा अकृत्रिम में प्रकृत्या हुआ करती है। अब आगे यह बतला रहे हैं कि किन क्षेत्रों में वृद्धि और हानि होती है और किन क्षेत्रों में नहीं होती।

भरतैरावतयोर्वृद्धि ह्रासौ षटसमयाभ्यासमुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥२७॥

भरत और ऐरावत क्षेत्रों में वृद्धि और हानि हुआ करती है, याने इस क्षेत्र में रहने वाले प्राणियों की आयु, देह, बुद्धि आदिक सभी में वृद्धि और हानि चलती है और यह वृद्धि हानि ६ कालों में चलती है। कालों का विभाग इस प्रकार है कि एक कल्पकाल में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों व्यतीत हो जाते हैं। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रत्येक में ६ काल विभाग हैं। इस तरह से जल्दी समझ में आ सकता कि जैसे दो सर्पिणियाँ पूछ से पूछ मिलाकर ऊपर खड़े होकर फण से फण मिला लें तो जैसे उनका एक चक्र हो जाता है और उस चक्र में पूछ की ओर कम विस्तार है और जैसे जैसे ऊपर की ओर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बढ़ते जाइये वैसे ही वैसे विस्तार बढ़ता हुआ मिलेगा। और जब दूसरी सर्पिणी पर आते हैं तो पहले विस्तार अधिक है, फिर घटते-घटते पूछ तक कम रह जाता है। आज इसका अवसर्पिणी काल चल रहा हैं जो प्रथम काल में तो बहुत बड़े मनुष्य, बहुत बड़ा सुख था। पहले भोगभूमि थी, उससे घटकर दूसरी भोगभूमि, फिर तीसरी भोगभूमि, उसके बाद चौथा काल आया, उसके बाद पंचम काल आया आजकल पंचम काल चल रहा है, इसके बाद छठा काल आयेगा और जब छठा काल समाप्त हो जायेगा तोउसके अन्तिम चरणों में प्रलय हो जायेगा। जिस प्रलय में कुछ जोड़े बचेंगे, कोई पुण्योदय से अपने आप छिपकर बच जायेंगे, किसी जोड़े को मनुष्यों के, पशुओं के, पक्षियों के जोकि गर्भज होते हैं उनको कुछ देव लोग ले जाकर सुरक्षित स्थान में रख देंगे। उस प्रलय काल में कुछ जोड़ों को छोड़ कर सभी जीवों का संहार हो जाता है। इसके बाद फिर उत्सर्पिणी काल का छठा काल आता है, फिर ५वाँ, फिर चौथा, फिर तीसरा, फिर दूसरा, फिर पहला काल आता है। उत्सर्पिणी समाप्त होने पर फिर ह्रास होने लगता है। इस तरह इन ६ कालों में भरत, ऐरावत क्षेत्र में वृद्धि और ह्रास चलते रहते हैं।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

भरत व ऐरावत भूमि को छोड़कर शेष भूमियों की अवस्थितता—भरत व ऐरावत क्षेत्र के अलावा जो अन्य भूमियां हैं वे सब अवस्थित होती हैं। भरत क्षेत्र के बाद हैमवत क्षेत्र है उसमें जघन्य भोगभूमि की रचना है। वहां जो मनुष्य तिर्यंच होते हैं वे एक पल्ल की आयु वाले हैं और जो उनकी वृद्धि चर्या जो कुछ भी है वह सब एक समान ही रहती है। हैमवत क्षेत्र के बाद हरि क्षेत्र है। वहां मध्यम भोगभूमि है। वहां के मनुष्य तिर्यञ्चों की आयु दो पल्ल की है और जैसी स्थिति है वैसी सदा काल चलती रहती है। हरि क्षेत्र के बाद विदेह क्षेत्र आता है। विदेह क्षेत्र के मेरु पर्वत से लगे हुए दक्षिण और उत्तर की ओर देव कुरु, उत्तर कुरु हैं। यहां भोगभूमि है। मनुष्य तिर्यञ्चों की आयु ३ पल्ल की है और जो भी स्थिति है वैसी सदा चलती रहती है। इसी विदेह क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम की ओर कर्मभूमि है। यहाँ से मोक्ष का जाना सदा चलता रहता है। तीर्थंकरों की उत्पत्ति होती रहती है, ये भी अवस्थित हैं, और इसी प्रकार विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर जो रम्यक हैरण्यवत क्षेत्र हैं उनकी भी स्थिति दक्षिण के क्षेत्र की तरह अवस्थित है। अब उन भूमियों में मनुष्य और तिर्यञ्चों की आयु एक समान है या बहुत घट बढ़ भी होता है, इसका विवरण करते हैं।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका ॥२९॥

भोगभूमिज जीवों की आयु—हैमवत नाम के दूसरे क्षेत्र में एक पल्य की स्थिति वाले जीव होते हैं, अर्थात वहाँ जघन्य भोगभूमि है। मनुष्य, पशु और पक्षियों की आयु एक पल्य की है। उसके बाद हरि क्षेत्र है। उसमें मध्यम भोगभूमियों की रचना है। वहाँ के मनुष्य, पशु, पक्षियों की आयु दो पल्य की होती है। देवकुरु में ३ पल्य की स्थिति वाले मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। यहाँ उत्तम भोग-भूमि की रचना है। जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रथम काल की जो रचना है वह तो देवकुरु में है। जिसे कहते हैं सुषमासुषमा, यहाँ के मनुष्य ३ पल्य की आयु वाले हैं और ६ हजार धनुष की ऊँचाई वाले हैं और ३ दिन में इन्हें क्षुधा होती है सो बहुत सूक्ष्म आहार लेकर जो एक छोटे बेर के समान, इतना ही आहार लेकर संतुष्ट हो जाते हैं। हरिवत के क्षेत्र में सुषमा नामक काल की तरह रचना है अर्थात भरत ऐरावत क्षेत्र में जो द्वितीय काल में रचना है वह रचना यहाँ है। यहाँ के मनुष्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दो पल्य की आयु के हैं, ४ हजार धनुष ऊँचाई के हैं, दो दिन में भूख की क्षुधा होती है और बेर प्रमाण इनका भोजन होता हैं। ये सब शंख वर्ण के होते हैं। देवकुरु में स्वर्ण वर्ण के शरीर होते हैं। हैमवत क्षेत्र में दो हजार धनुष के ऊँचे पुरुष होते हैं। और एक दिन बाद इन्हें क्षुधा होती है, सो आंवले प्रमाण इनका आहार होता है। नील कमल की तरह इनके शरीर का रंग होता है।

तथोत्तराः ॥३०॥

ढाईद्वीप में दक्षिण रचनावत उत्तर रचना—जैसे विदेह क्षेत्र में दक्षिण की ओर जो जो कुछ रचनाएं हैं वैसी ही रचनाएं विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर के क्षेत्र की हैं। जैसे भोगभूमियाँ हैं, जैसी भोगभूमिज मनुष्य तिर्यञ्चों की स्थिति है, जितनी ऊँचाई है, जैसा सुख है, जिस प्रकार का आहार है ठीक उसी तरह इस उत्तर के क्षेत्र में है, अर्थात उत्तर कुरु की रचना देव कुरु की तरह है, रम्यक क्षेत्र की रचना हरिक्षेत्र की तरह है, हैरण्यवत क्षेत्र की रचना हैमवत क्षेत्र की तरह है और ऐरावत क्षेत्र की रचना भरत क्षेत्र की तरह है। अब विदेह क्षेत्र जोकि अवस्थित है उसमें कितनी स्थिति होती है, यह बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥

विदेह में उत्पन्न मनुष्यों की आयु—विदेह क्षेत्र में जिन मनुष्यों की आयु संख्यात काल की होती है, विदेह से मतलब है देव कुरु और उत्तर कुरु को छोड़कर शेष का विदेह जहां से सदा मोक्ष का जाना होता रहता है। जैसे कि भरत ऐरावत क्षेत्र में चौथे काल में रचना होती है याने अवसर्पिणी के चौथे काल के प्रारम्भ में और उत्सर्पिणी के चौथे काल के अन्त में जैसी रचना चलती है उस प्रकार की रचना इस विदेह क्षेत्र में सदा रहती है। यह काल सुखमा दुःखमा के समान है। यहां मनुष्य ५०० धनुष की ऊँचाई के होते हैं। प्रतिदिन इनका आहार होता है। इनकी स्थिति उत्कृष्ट तो एक पूर्व कोटि की है। जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। याने कोई मनुष्य गर्भ में ही मर सकता और कोई मनुष्य अधिक आयु पाये तो एक कोट पूर्व की आयु प्राप्त कर सकता है।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

भरत क्षेत्र का विस्तार भागानुसार विस्तार—भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के १९०वें भाग प्रमाण है, क्योंकि वहाँ इस प्रकार का विस्तार है कि जितना भरत क्षेत्र का विस्तार है उससे दूना पहले पर्वत का है, उससे दूना दूसरे क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे पर्वत का, उससे दूना तीसरे क्षेत्र का, उससे दूना तीसरे पर्वत का और उससे दूना विदेह क्षेत्र का। इस प्रकार विदेह क्षेत्र के उत्तर में दक्षिण की तरफ भाग है, ये सब १९० होते हैं जम्बूद्वीप के विस्तार में एक लाख योजन में १९० का भाग देने पर भरत क्षेत्र का विस्तार हो जाता है।

लवण समुद्र में उपस्थित बड़वानलों का व पातालों का विवरण—अब लवण समुद्र का विस्तार सुनो – जम्बूद्वीप के बाद जम्बूद्वीप को घेरे हुए लवण समुद्र है यह लवण समुद्र जम्बूद्वीप की वेदिका और दूसरे द्वीप की भीतरी वेदिका के बीच में अवस्थित है। इस समुद्र का भूमितल समान है, जैसे कि कृत्रिम समुद्र किनारे पर गहरे नहीं होते और बीच में गहरे होते हैं इस प्रकार से लवण समुद्र नहीं है। यह सर्व ओर एक समान गहरा है। यह दो लाख योजन के विस्तार वाला है, एक हजार योजन का गहरा है और चूंकि समुद्र के बीच में बड़वानल अनेक जगह अवस्थित है, जिसके कारण जल समतल से ऊँचा उठा रहता है। जैसे कि जौ की राशि ऊँची उठी होती है। इस लवण समुद्र के

http://sahjanandvarnishastra.org/

बीच में चारों दिशाओं में महापाताल पाये जाते हैं जो जम्बूद्वीप की वेदी से ९५ हजार योजन दूर मौजूद हैं। जिनका तला और किनारा वज्रमय है। एक लाख योजन के गहरे हैं और नीचे तल भाग में चलने में १० हजार योजन के विस्तार वाला है। ऐसे ४ महापाताल हैं, जिनका नाम है पाताल, बड़वामुख, धूपकेसर और कलाम्बुक। ये ४ बड़वानल क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर में हैं। इन पातालों के नीचे के तृतीय भाग में वायु रहती है अर्थात जितने ऊँचे ये पाताल हैं उसके उसके ३ भाग किये जायें, उसके नीचे के त्रिभाग में बहुत घन वायु रहती है और मध्य के त्रिभाग में वायु एवं जल रहता है और ऊपर के त्रिभाग में केवल जल रहता है। रत्नप्रभा नाम की जो पृथ्वी है उस पृथ्वी का जो खर भाग है अर्थात इस पृथ्वी के जो ३ भाग बताये गये थे—खर, पंक और अव्वहुल। अव्वहुल भाग में तो नारकियों का निवास है—खर और पंक भाग में देवों का निवास है तो यहाँ खर भाग में बने हुये जो भवन हैं वहाँ वातकुमार का निवास है और उनकी देवांगनायें उनकी क्रीड़ा से उत्पन्न हुआ जो वायु में क्षोभ है उस क्षोभ के कारण पाताल में जो उन्मीलन निमीलन होता है उससे उठना गिरना, इसके कारण से हवा और चलती, ऊँचा उठ जाता, फिर प्रवाह होता। यह होता रहता है। इस ही कारण से उस बड़वानल के ऊपर ५० योजन प्रमाण जल की वृद्धि हो जाती है। इस तरह से दोनों ओर से रत्न वेदिका से ऊपर दो गव्यूत प्रमाण याने करीब ४ कोश प्रमाण जल की वृद्धि हो जाती है और जब पाताल में इनका वेग शांत हो जाता है तो उस उठे हुये की हानि हो जाती है। यह चारों दिशाओं में जो यह पाताल हैं उनके अन्तर प्रत्येक के २२७१७० (दो लाख सत्ताइस हजार एक सौ सत्तर) योजन है तथा कुछ अधिक ३ गव्यूत और है। जैसे कि चारों दिशाओं में ४ महा-पाताल हैं इसी प्रकार दिशाओं के बीच में जो विदिशायें हैं उन विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर ४ छोटे पाताल और हैं, इनको छुद्र पाताल कहते हैं। ये १० हजार योजन गहरे हैं। उतना ही इनके मध्य में विस्तार है। जड़ में और ऊपर में एक हजार योजन का विस्तार है यहां पर भी पहले त्रिभाग में नीचे के त्रिभाग में वायु है, मध्य के त्रिभाग में वायु और जल है, ऊपर के त्रिभाग में केवल जल है, और इस महापाताल और छुद्र पातालों के बीच में याने इन ८ अन्तरों में एक हजार छुद्र पाताल और हैं, उनमें भी सब इसी तरह से कार्य होते हैं। यहाँ वातकुमार के देव और उनकी देवांगनाओं का जो क्रीड़ा ऊधम चलता है उससे वायु में क्षोभ होता है और उस कारण वहां का जल ऊँचा उठ जाता है। जब उनकी वायु उपशम को प्राप्त होती है तो जल नीचे आ जाता है।

लवण समुद्र के किनारों के आसपास की रचना आदि—लवण समुद्र जो कि जम्बूद्वीप के चारों ओर है, उसके किनारे पर उसके प्रमुख स्वामी की तरह चार देवों के नगर हैं। चारों दिशाओं में एक-एक नगर है, जिसे कहते हैं—बेलंधर, नागपति याने समुद्र के किनारों पर रक्षा करते हुये मानों ये देवों के नगर हैं, जिनकी आयु एक पल्ल प्रमाण है, ऐसे वहाँ देव रहते हैं। वे १० धनुष की ऊँचाई के हैं। प्रत्येक बेलंधर देव के चार-चार देवांगनायें हैं, ये अनेक परिवारों से सहित है। ये सब देव मिलकर १,४२,००० (एक लाख बयालीस हजार) हैं। इन सबका कार्य अपने मनमाना मन रमाना, क्रीड़ा करना है। और मानो ये सब समुद्रों के अधिपति हैं। जम्बूद्वीप की जो वेदिका है उससे १२ हजार योजन लवण समुद्र की ओर जाकर एक गौतम नामक समुद्र के अधिपति का द्वीप आता है जो १२ हजार योजन का लम्बा-चौड़ा है। इस लवण समुद्र के विजय आदिक चार द्वार हैं जो चारों दिशाओं में हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तिर्यग्लोक के समुद्रों की विशेषतायें—लवणोद आदिक सभी स्वयंभूरमण पर्यन्त जो समुद्र हैं वे सब १ हजार योजन गहरे हैं और प्रत्येक समुद्र के दोनों ओर याने द्वीप के निकट वेदिकायें हैं। लवणोद समुद्र का पानी उठा हुआ है, शेष समुद्र का पानी उठा हुआ नहीं, किन्तु एक प्रसार मात्र को लिये हुए है। लवण के समुद्र के जल का स्वाद नमक के रस की तरह खारा है। एक वारुणी समुद्र है, उसका रस वारुणी की तरह है, क्षीरोदधि का जल क्षीर रस की तरह है, जैसे कि दुग्ध हो, घृतोद समुद्र का जल घी की तरह स्वाद वाला है। कालोद समुद्र और पुष्करोद समुद्र एवं स्वयंभूरमण समुद्र, इनका स्वाद जल की तरह है। शेष समुद्रों का भी इसी तरह सामान्य स्वाद है। लवण समुद्र में तो जहाँ नदी गिरती है उस स्थल पर मत्स रहा करते हैं, जिनके शरीर ९ योजन प्रमाण हो सकते हैं। मत्स सब सम्मूर्छन जन्म वाले हैं। जो भी वहां पृथ्वी, कूड़ा-करकट, पुद्गल आदिक पिण्ड पड़े हों वहां ही जीव का जन्म हो जाता है और वहीं आकार प्रमाण अंगोपांग रूप से बन जाता है और लवण समुद्र के बीचोबीच जो मत्स होते हैं वे १८ योजन के शरीर वाले हैं। कालोद समुद्र में जहाँ नदियाँ गिरती हैं उस स्थल पर तो १८ योजन के शरीर वाले मत्स हैं और समुद्र के भीतर ३६ योजन के शरीर वाले मत्स्य हैं। अन्तिम जो समुद्र है स्वयंभूरमण उस समुद्र में नदी गिरने के स्थलों पर तो ५०० योजन के शरीर वाले मत्स हैं। और अन्तिम समुद्र के बीचोबीच जो मत्स्य हैं वे एक हजार योजन के शरीर वाले हैं। जब तिर्यञ्चों की अवगाहना उत्कृष्ट बतायी जाती है तो अन्तिम समुद्र के बीच में रहने वाले मत्स्यों की बतायी जाती है। शेष समुद्रों में चर जीव नहीं हुआ करते।

तिर्यग्लोक की रचना में प्रकृत्त वर्णन का उपसंहार—असंख्याते द्वीप और असंख्याते समुद्रों से भरा हुआ यह तिर्यकलोक है, जिसमें ठीक सबके बीच यह जम्बूद्वीप है, और जम्बूद्वीप की महिमा अनेक दार्शनिकों ने गाया है। इस जम्बूद्वीप की महिमा इस कारण भी बढ़ी हुई है कि ढाई द्वीप के अन्दर जो ज्योतिषी देव हैं वे सब इस जम्बूद्वीप के मध्य में रहने वाले मेरु की प्रदक्षिणा देते हैं जो ५ मेरु हैं जम्बूद्वीप में एक, दूसरे द्वीप में दो और तीसरे आधे द्वीप में दो, इस प्रकार ५ मेरु हैं। उन मेरुओं में भी सबसे बड़ी अवगाहना वाला मेरु यह जम्बूद्वीप के मध्य में रहने वाला मेरु है। यहां जो कुछ भी वर्णन चलता रहता है वह सब तीर्थंकर देव की दिव्य ध्वनि से खिरा हुआ वर्णन है। ऐसी केवलियों की दिव्य ध्वनि की परम्परा से गणधर देव ने जिसे झेला, आचार्यों ने जिसे समझा और अपनी लेखनी से उसे लेख बद्ध किया उस परम्परा से यह सब वर्णन चला आ रहा है। इनकी रचनाओं को अवधिज्ञानी मनुष्य अवधिज्ञान से साक्षात् प्रत्यक्ष जानते हैं और आगम से सभी पुरुष जान सकते हैं जिसका ७ तत्त्व ९ पदार्थ सम्बन्धी कथन में कहीं भी विरोध नहीं आता, जो कि अनुभव गम्य है, युक्तिगम्य है, ऐसे वीतराग सन्तों के अन्य कथन जो कि परोक्षभूत पदार्थों के विषय में हैं वे भी जैसे कहे गए वैसे ही सत्य हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

द्विर्धातकी खण्डे ॥३३॥

धातकी खण्ड में क्षेत्र पर्वतों की रचनायें—जम्बूद्वीप में क्षेत्र, पर्वत, तालाब, कमल आदिक की संख्या विस्तार वगैरह कहे गए हैं। अब धातकी खण्ड में जो कि लवण समुद्र के बाद है इस दूसरे द्वीप में ये सब किस-किस प्रकार हैं इसका विवरण करने के लिए यह सूत्र कहा गया है। जितना जम्बूद्वीप में क्षेत्र है उससे दूना क्षेत्र इस दूसरे द्वीप में है। इस प्रकार कुलाचलों पर मध्य में रहने वाले तालाब और इन तालाबों में अवस्थित कमल आदिक सब दूने-दूने हैं, ये दूने क्षेत्र किस तरह हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गये ? तो पहले धातकी खण्ड द्वीप जो कि लवण समुद्र को घेरे हुये दूने विस्तार वाला है उसके दक्षिण और उत्तर में एक-एक इस्वाकार पर्वत है, जिसके कारण द्वीप के दो विभाग हो जाते हैं—पूर्व भाग और पश्चिम भाग। अब प्रत्येक भाग में दक्षिण से उत्तर की ओर भरत हैमवत आदिक ७-७ क्षेत्र हैं और इसी प्रकार ६-६ कुलाचल हैं और उन प्रत्येक कुलाचलों पर तालाब हैं। इस तरह यहाँ १४ क्षेत्र हो जाते हैं, इसी कारण दो विदेह हो जाते हैं और उन दोनों विदेहों के मध्य में एक-एक मेरु पर्वत है। अब यहाँ भरत क्षेत्र का भीतरी विस्तार कितना है ? तो धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र का विस्तार है ६६१४ योजन और २९/१०० एक योजन का भाग, इतना विस्तार धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र का है। यह इसका भीतरी विस्कम्भ है। अब भरत क्षेत्र के मध्य का विस्कम्भ कितना है ? तो वह है १२५८१ (बारह हजार पांच सौ इक्यासी) योजन और ३६/१०० भाग प्रमाण है। इस ही भरत क्षेत्र का बाह्य विस्तार १८५४७ योजन तथा ५५/१०० भाग प्रमाण है। इस तरह भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तार है हिम्मान पर्वत का और उससे दूना विस्तार है हैमवत क्षेत्र का, उससे दूना विस्तार है महाहिम्मान पर्वत का। उससे दूना विस्तार है हरि क्षेत्र का, उससे दूना विस्तार है निषध पर्वत का और उससे दूना विस्तार विदेह का है और विदेह के दक्षिण दिशा में क्षेत्र पर्वतों का जितना विस्तार है उस प्रकार उसके उत्तर भाग के क्षेत्र पर्वत आदिक का है। इन कुलाचलों में पद्म-महापद्म आदिक नाम के तालाब हैं और उन तालाब से नदियाँ निकली हैं। वे नदियां कुछ दूर चल-कर एक गोल पर्वत को आधा घेरकर फिर पूर्व नदी पूर्व दिशा को गई है, दूसरी नदी पश्चिम को गई है।

धातकी खण्ड में अवस्थित मेरु आदि की विशेषतावों का वर्णन—धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं, एक है पूर्व दिशा के विदेह में दूसरा है पश्चिम दिशा के विदेह में जो कि १ हजार योजन गहरे हैं अर्थात् उनकी जड़ है और मूल में विस्तार ९५०० योजन है और पृथ्वी पर ९४०० योजन विस्तार है, ऊँचाई ८४ हजार योजन है, जैसी रचना जम्बूद्वीप में अवस्थित सुमेरु पर्वत की है उसी प्रकार की इस मेरु पर्वत की भी है। भूमितल पर एक वन है, उससे ५०० योजन ऊपर नन्दन वन है जो कि ५०० योजन के विस्तार वाला है और घिराव में ५५५०० योजन है। उसके बाद ऊपर सौमनस नाम का वन है। उससे फिर २८ हजार योजन ऊपर चलकर पांडुक वन है, जैसे जम्बूद्वीप में देव कुरु उत्तर कुरु में जम्बू वृक्ष है इसी प्रकार धातकी खण्ड में धातकी वृक्ष है। यह वृक्ष पृथ्वीकायिक है। इसकी शाखाओं पर बड़े ऊँचे महल बने हुये हैं। जिनके परिवार के भी अनेक वृक्ष हैं, उनमें द्वीप का अधिपति देव रहता है। इसी धातकी खण्ड के नाम पर इस दूसरे द्वीप का नाम धातकी खण्ड पड़ा। यह धातकी खण्ड गोल है और दोनों ओर समुद्र का स्पर्श करने वाला है अर्थात् धातकी खण्ड एक ओर तो लवण समुद्र से मिला हुआ है, दूसरी ओर कालोद समुद्र से मिला है। इस धातकी खण्ड को घेरकर कालोद समुद्र है, जिसका विस्तार ८ लाख योजन है और उसकी परिधि १७०६०५ (एक लाख ७० हजार छह सौ पाँच) योजन है। इस कालोद समुद्र को घेरकर पुष्कर द्वीप है, जिसका विस्तार कालोद समुद्र से दूना है। इस पुष्कर द्वीप के ठीक बीच में गोलाई को लिये हुये एक मानसोत्तर पर्वत है। इस मानसोत्तर पर्वत से भीतर अर्थात् जम्बूद्वीप की ओर इस तीसरे द्वीप के आधे में ७ क्षेत्र, ७ पर्वत आदिक की रचना धातकी खण्ड की रचना की तरह है। तो इस रचना का निर्देश करने के लिये सूत्र कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

पुष्करवर द्वीप की रचनायें—जैसे धातकी खण्ड में जम्बूद्वीप से दुगुण रचना है इसी प्रकार पुष्करार्द्ध में भी दो-दो क्षेत्र, पर्वत ह्रद पुष्कर आदिक हैं। इस पुष्करार्द्ध के भरत क्षेत्र का भीतरी विस कम्भ ४५५७९ और एक योजन के १०० भाग में ७३ भाग प्रमाण हैं। इस भरत क्षेत्र का मध्य विस्कम्भ ५३५१२ योजन तथा एक योजन के १०० भाग में से ९९ भाग प्रमाण, इस भरत क्षेत्र का बाह्य विषकम्भ ६५४०० योजन तथा एक योजन के १०० भाग में से १३ भाग प्रमाण है। इससे भी क्षेत्र से दूना पर्वत, पर्वत से दूना क्षेत्र विस्तार वाले चले गये हैं विदेह क्षेत्र तक, फिर विदेह क्षेत्र से आगे उन सब क्षेत्र पर्वतों का विस्तार उतना है जितना कि विदेह क्षेत्र से दक्षिण की ओर अवस्थित क्षेत्र पर्वत का है। जैसे उत्तर कुरु में जम्बूद्वीप में जम्बू वृक्ष था और धातकी खण्ड में धातकी पर्वत था इसी प्रकार पुष्करार्द्ध में उत्तर कुरु में पुष्कर याने कमल, पृथ्वीकायिक बना हुआ है, उस पर जो प्रासाद हैं वहाँ उस द्वीप का अधिपति रहता है और इसी कारण इस द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप कहलाता है। इस पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है उससे दो भाग हो गए। मानुषोत्तर पर्वत से बाहर का भाग कर्मभूमि की रचना से रहित है। उस मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई १७२१ योजन, इसका अवगाह मायने पृथ्वी तल में यह पर्वत ४३० योजन तथा एक कोश है। उस मानुषोत्तर पर्वत का मूल में विस्तार २२ हजार योजन है, मध्य में विस्तार ७२३ योजन, ऊपर में विस्तार ४२४ योजन, इस मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर चारों दिशाओं में चार अरहंत मन्दिर हैं जिनकी लम्बाई ५० योजन और विस्तार २५ योजन और ऊंचाई ३७-१/२ योजन है। यहाँ भी सब रचना जैसे अन्य जिनेन्द्र मन्दिरों की बतायी गई है उसके द्वार हैं, वहाँ प्रेक्षागृह आदिक हैं, वे सब यहाँ भी हैं। इसके अतिरिक्त १४ कूट और हैं, जिन कूटों पर देवों के प्रासाद बने हुए हैं। इस तरह पुष्करार्द्ध द्वीप में कर्मभूमि की रचना कही गई है। उसी को स्पष्ट करने के लिए कहते हैं।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

मानुषोत्तर पर्वत से आगे मनुष्यों के आवास व विहार की असंभवता—मानुषोत्तर पर्वत से पहले-पहले मनुष्य रहते हैं, इससे बाहर मनुष्य नहीं पाये जाते। जम्बूद्वीप से लेकर मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य मिलते हैं, इससे बाहर नहीं और तभी यह सब ढाई द्वीप कहलाता है। जितना विस्तार ढाई द्वीप का है उतना ही विस्तार सिद्धलोक का सिद्ध क्षेत्र का है, सिद्ध के निवास का है। इसका कारण यह है कि मुनिराज ढाई द्वीप के अन्दर ही अपने रत्नत्रय की साधना को पूर्ण कर मुक्त होते हैं। तो जिस क्षेत्र से, जिस स्थान से मुक्त होते हैं ठीक ऋजुगति से इस स्थान से ऊपर जाकर लोक में विराजमान हो जाते हैं। इस ढाई द्वीप के बाहर कोई भी मनुष्य नहीं जा सकता, हाँ उपपाद और समुद्घात के रूप से मनुष्य का जीव भले ही छू आये पर कोई भी मनुष्य चाहे विद्याधर हो, चाहे ऋद्धि प्राप्त मनुष्य हो कोई भी मानुषोत्तर पर्वत से बाहर नहीं जा सकता। इस विषय में एक कथानक प्रसिद्ध है कि किसी नगर में कोई सेठ-सेठानी रहते थे। तो सेठ के मन में यह भाव हुआ कि हम तो नंदीश्वरद्वीप की वंदना करने जायेंगे। वह विद्याधर था, आकाशगामी था। तो उसने चाहा कि मैं अपनी विद्या के बल से नंदीश्वरद्वीप की वंदना कर आऊँ। तो सेठानी थी जिनवाणी की परम भक्त। उसने वहाँ जाने के लिये मना किया और कहा कि देखो मानुषोत्तर पर्वत से आगे इस मनुष्य का गमन नहीं है, पर सेठ ने सेठानी की बात पर कुछ ध्यान न दिया और अपने विमान पर बैठ कर चल दिया। वह विमान मानुषोत्तर पर्वत से

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

टकरा गया और वह सेठ वहीं मरण को प्राप्त हो गया। चूंकि सेठ के उस समय नंदीश्वर की वंदना करने के भाव थे इस कारण वह वहाँ मरकर देव हुये। कुछ ही समय में युवा हो गए। उसने अवधिज्ञान से जाना कि मैंने नंदीश्वर की वन्दना के भाव किया था और मानुषोत्तर पर्वत से टकराकर मेरा देहान्त हुआ था सो अब मैं नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना के लिए जाऊँगा। अब तो वह देव था, वह नन्दीश्वर द्वीप पहुँचा और वहाँ वन्दना किया और वन्दना करने के बाद उसे एक कौतूहल उपजा कि मैं अपनी पूर्वभव की स्त्री (सेठानी) को सेठ के रूप में बनकर उसे बताऊं कि मैंने नन्दीश्वर द्वीप की वंदना कर लिया है, तो वह देव सेठ का रूप धरकर सेठानी के पास पहुँचा और बोला—देखो मैं अब नन्दीश्वर द्वीप की वंदना करके आ गया। तो वह सेठानी बोली कि आपकी यह बात तो असत्य है। और यदि आपने नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना की है तो आप अब मनुष्य नहीं हैं, देव होकर ही वन्दना की होगी। तो सेठानी का इतना दृढ़ श्रद्धान जानकर वह देव अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ और कहा— तुम धन्य हो, तुम्हारा श्रद्धान धन्य हो। मैं मानुषोत्तर पर्वत से टकराकर मरकर देव बना था, तब नन्दीश्वर द्वीप की वंदना कर सका। मानुषोत्तर पर्वत के भीतर मनुष्य हैं। पुष्करवर द्वीप आधा भीतर है। उस आधे में धातकी खण्ड के समान क्षेत्र और पर्वत की रचना है। यहाँ भी दो विदेह हैं, इस तरह ढाई द्वीप में ५ विदेह हो जाते हैं और प्रत्येक विदेह में दो-दो भाग हैं। प्रत्येक भाग में ३२-३२ नगरी हैं। इस तरह ५ विदेह के होने से ३२×५=१६० तीर्थंकर हो सकते हैं। जब कभी भरत और ऐरावत क्षेत्र में चतुर्थ काल बीत रहा हो और सभी भरत, ऐरावत में एक-एक तीर्थंकर भी हो रहे हों तो ऐसी स्थिति में ५ भरत और ५ ऐरावत के १० तीर्थंकर और मिलाये जायें तो किसी समय एक साथ १७० तीर्थंकर इस ढाई द्वीप में मिल सकते हैं।

अष्टमद्वीप में अकृत्रिम पूज्य रचनायें—इस पुष्कर द्वीप के आगे दूने-दूने विस्तार वाले समुद्र हैं उससे आगे दूने विस्तार वाला द्वीप है। इस तरह दूने-दूने समुद्र और द्वीप गोलाकार होते-होते ८वाँ द्वीप नन्दीश्वर है। इस नन्दीश्वर द्वीप का गोल में विष्कम्भ १६३ करोड़ ८४ लाख योजन है इसकी परिधि २०७२ करोड़ ३३ लाख ६४ हजार १६० योजन है, तथा एक गव्यूति और है। नन्दीश्वर द्वीप के बहुत मध्य भाग में चारों दिशाओं में ४ अंजन गिरि पर्वत हैं। जिनका आकार गोल ढोल की तरह है। इस पर्वत की गहराई १ हजार योजन है, ऊँचाई ८४ हजार योजन है। इन अंजन गिरियों के चारों दिशाओं में एक लाख योजन के बाद ४-४ बावड़ियाँ हैं, जिनका नाम है नन्द, नन्दवती, नन्दोचरा और नन्दीगोसा। ये सब १ हजार योजन गहरी हैं और एक लाख योजन विस्तार वाली हैं। चौकोर हैं। इनमें जलचर जीव नहीं रहते। इनका जल अत्यन्त स्वच्छ है। इन बावड़ियों में क्रम से सौधर्म, ऐसान, चमर और वैरोयन के स्थान हैं। इस प्रकार दक्षिण के अन्जन गिरि के बाद ४ बावड़ियाँ हैं, वहाँ सौधर्म के लोकपालों के स्थान हैं। पश्चिम दिशा के अन्जन गिरि की भी ४ बावड़ियाँ हैं। वहाँ पूर्व दिशा के क्रम से ४ बावड़ियों पर अधिकार वेणुदेव, वेणुताल, वरुण और भूतानन्द का है। इसी प्रकार शेष दोनों दिशाओं में भी अन्जन गिरि के चारों ओर बावड़ियाँ हैं और उन पर मुख्य देवों का निवास स्थान है इन सब पर्वतों पर अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इन बावड़ियों के कोने पर दो-दो और पर्वत हैं और अन्जन गिरि के चारों ओर ४-४ पर्वत हैं। इस प्रकार ८ और ४ एवं एक मिलकर १३-१३ प्रत्येक दिशा में पर्वत हैं। जिन पर जिनालय हैं। यहाँ देवगण प्रत्येक आषाढ़, कार्तिक और फागुन के अन्तिम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

८-८ दिनो में वंदना करने के लिये आते हैं और वे बहुत पुण्यलाभ लेते हैं। उसकी ही स्मृति में यहां भी लोग इन अष्टाह्निका के दिनों में नन्दीश्वर द्वीप की पूजा करते हैं और महिमा गाते हैं।

ग्यारहवें द्वीप के मध्य स्थिति कुन्डल गिरि पर कूटों की रचनायें—अष्टद्वीप नन्दीश्वर द्वीप को घेर कर समुद्र है, फिर द्वीप है, इस तरह से द्वीप समुद्र बढ़ते-बढ़ते ११वां पर्वत है जिस पर जिनालय बने हुए हैं। अब इस ११वें द्वीप का नाम कुण्डलवर द्वोप है। द्वीप के बहुत बीच में गोल आकार वाले चूड़ी के आकार वाला एक कुण्डल नाम का पर्वत है। जिसकी आकृति यवरासि की तरह है। यह पर्वत एक हजार योजन गहरा है, ४२ हजार योजन ऊँचा है। १००२२ योजन मूल में विस्तार वाला है। ७०२३ योजन बीच में विस्तार वाला है और ४०२४ योजन ऊपर के विस्तार वाला है। तो जैसे तीसरे द्वीप के बीच में घेरे हुए मानुषोत्तर पर्वत है ऐसे ही इस कुण्डलवर द्वीप में कुण्डल नाम का बोच में चूड़ी के आकार का पर्वत है। इसपर्वत के ऊपर पूर्व आदिक दिशाओं में १६ कूट हैं, इनके नाम हैं—वज्र, वज्रप्रभ, कनक, कनकप्रभ, रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ, महाप्रभ, अंक, अंकप्रभ, मणि, मणिप्रभ, स्फटिक, स्फटिकप्रभ, हिम्वत महेन्द्र। इन सब कूटों का विस्तार प्रमाण मानुषोत्तर कूटों के समान है। एक-एक दिशा में ये ४-४ कूट हैं। अब इन कूटों पर नागेन्द्र रहते हैं जिनका विवरण इस प्रकार है। पूर्व दिशा में जो ४ कूट हैं उन पर नागेन्द्र इस तरह रहते हैं कि वज्रकूट पर त्रिसिर नाम के नागेन्द्र हैं, बज्रप्रभ कूट पर पंचसिर नाम के नागेन्द्र हैं। कनककूट पर महासिर नाम के नागेन्द्र हैं। कनकप्रभ कूट पर महाभुज नाम के नागेन्द्र हैं। दक्षिण दिशा में रजतकूट पर पद्मनाम के नागेन्द्र हैं। रजतप्रभ कूट पर पद्मोत्तर नामक नागेन्द्र हैं, सुप्रभ कूट पर महापद्म नामक नागेन्द्र है, महाप्रभ कूट पर वासुकि नामक नागेन्द्र है। ये नागेन्द्र सब व्यन्तर देव हैं। पश्चिम दिशा में जो ४ कूट हैं उनमें अंक कूट पर स्थिर हृद नामक नागेन्द्र है। अंकप्रभ कूट पर महाहृद नामक नागेन्द्र है। मणिकूट पर श्री वृक्ष नामक नागेन्द्र है और मणिप्रभ कूट पर स्वस्तिक नामक नागेन्द्र है। उत्तर दिशा में स्फटिक कूट पर सुन्दर नामक नागेन्द्र है। स्फटिक प्रभकूट पर विशालाक्ष नामक नागेन्द्र है। हिम्मान कूट पर पांडुर नामक नागेन्द्र है और महेन्द्र कूट पर पांडुक नामक नागेन्द्र है। ये सोलहों नागेन्द्र पल्य की आयु वाले हैं। एक पल्य में अनगिनते वर्ष आते हैं। अब पूर्व और पश्चिम दिशा में कुण्डल पर्वत पर दो कूट और हैं जिनके ऊपर पूर्व आदिक दिशाओं के क्रम से ४ अरहन्त मन्दिर हैं, जिन मन्दिरों का प्रमाण उतना है जितना कि अंजन गिरि पर्वत पर जो जिनायतन हैं उनके प्रमाण हैं।

१३वें द्वीप के मध्य स्थित रुचक गिरि पर कूट, देव, देवी व जिनालयों का वर्णन—कुण्डलवर द्वीप से आगे उससे दूने विस्तार वाला वलयाकार कुण्डलवर नाम का समुद्र है, उसके बाद उससे दूनावलय विस्तार वाला शंखवर द्वीप है। उससे आगे उससे दूना वलय विस्तार वाला शंखवर समुद्र है, उससे दूना विस्तार वाला रुचकवर द्वोप है। यह द्वीप १३वाँ द्वीप है। इसके ठीक बहुत बीच में वलयाकार एक रुचकवर पर्वत है, जिसकी गहराई एक हजार योजन है. ऊँचाई ८४ हजार योजन है और मूल में मध्य में और अग्र भाग पर विस्तार ४२ हजार योजन है। इस रुचक गिरि के ऊपर पूर्व आदिक दिशाओं में ४ कूट हैं जिनके नाम हैं—नन्दावर्तक, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्द्धमान। ये चारों कूट ५००-५०० योजन ऊँचे हैं और नीचे बीच में और ऊपर एक हजार योजन के विस्तार वाले हैं। पूर्व दिशा में अवस्थित नद्यावर्त कूट पर पद्मोत्तर नाम का दिग्गजेन्द्र है। दक्षिण दिशा में स्वस्तिक कूट पर सुदृष्टि नाम का दिग्गजेन्द्र है। दक्षिण दिशा में श्रीवृक्ष नाम के कूट पर नील नाम का दिग्ग-

http://sahjanandvarnishastra.org/

जेन्द्र है और उत्तर दिशा में वर्द्धमान नामक कूट पर अंजन गिरि नामक दिग्गजेन्द्र है। ये चारों ही देव एक पल्य की आयु वाले हैं।

रुचक गिरि के कूटों पर रहने वाली तीर्थंकर की माता की सेवा में उद्यत दिक्कुमारियों का वर्णन—इस ही रुचकवर कूट पर पूर्व दिशा में ८ कूट हैं, जिनके नाम हैं—वैडूर्य, कांचन, कनक, अरिष्ट दिग्स्वस्तिक, नन्दन, अन्जन और अन्जन मूलक। इन कूटों का भी प्रमाण उन चार कूटों की तरह है। इन कूटों पर ८ दिग्कुमारियां रहती हैं। जो तीर्थंकर भगवान के जन्म के समय में यहां आकर तीर्थंकर की माता के समीप में कलश चमर आदिक लेकर रहती हैं। इन कूटों पर जो दिग्कुमारियां रहती हैं उनका नाम इस प्रकार है। वैडूर्यकूट पर विजया, कंचन कूट पर वैजयन्ती, कनक कूट पर जयन्ती, अरिष्ट कूट पर अपराजिता, दिग्स्वस्तिक कूट पर नन्दा, नन्दन कूट पर नन्दोत्तरा, अन्जन कूट पर आनन्दा और अन्जन मूल कूट पर नांदीवर्द्धना। इस रुचकवर कूट पर दक्षिण में भी पूर्व समान ८ कूट और ८ दिग्कुमारियाँ हैं ये दिग्कुमारियां यहाँ आकर तीर्थंकर की माता के समीप में दर्पण धारण करके रहती हैं। यहां ८ कूट और देवियों के नाम इस प्रकार हैं—अमोघ कूट पर स्वस्तिता, सुप्रबुद्ध कूट पर सुप्रनिधि, मन्दिर कूट पर सुप्रबुद्ध, विमल कूट पर यशोधरा, रुचक कूट पर लक्ष्मीमती, रुचकात्तर कूट पर कीर्तिमती, चन्द्र कूट पर वसुन्धरा और सुप्रतिष्ठ कूट पर चित्रा। रुचक गिरि पर्वत पर पश्चिम दिशा में ८ कूट हैं, जिनका परिमाण उन्हीं कूटों के समान है इन कूटों पर भी ८ दिग्कुमारियां रहती हैं, जो तीर्थंकर के जन्म समय में तीर्थंकर की माता के समीप छत्रों को धारण करती हुई और गाती हुई विराजती हैं। इन कूट और देवियों के काम इस प्रकार हैं—लोहिताक्ष कूट पर इलादेवी, नगत कुसुम कूट पर सुरा देवी, पद्मकूट पर पृथ्वी, नलिन कूट पर पद्मावती, कुमुद पर कानना, सौमनस कूट पर नवमिका, यक्ष कूट पर यशस्विनी और भद्र कूट पर भद्रा। इस रुचक पर्वत पर उत्तर दिशा में ८ कूट हैं, जिनके परिमाण पूर्वोक्त कूटों की तरह है। इस पर ८ दिग्कुमारियां रहती हैं, जो तीर्थंकर की माता के समीप आकर चमर ग्रहण करती हुई माता की सेवा करती हैं। इन कूट और देवियों के नाम इस प्रकार हैं। स्फटिक कूट पर अलम्भूसा, अंक कूट पर मिश्रकेसा, अन्जन कूट पर पुण्डरीकनी, कांचन कूट पर वारुणी, रजत कूट पर आसा, कुण्डल कूट पर हिरी, रुचिर कूट पर श्री, सुदर्शन कूट पर धृति, इसी रुचक पर्वत पर पूर्वादिक दिशाओं में ४ कूट और हैं, जिन पर विद्युत्कुमारी देवियां रहती हैं और यहां आकर तीर्थंकर की माता के समीप में सूर्य की तरह प्रकाश करतो हुई ठहरती हैं। इन ४ कूट और कुमारियों के नाम इस प्रकार हैं—विमल कूट पर चिमा, मित्यालोक कूट पर कनकचिमा, स्वयंप्रभ कूट पर त्रिसिरा, किलोद्योत कूट पर सूत्रमणि। इसी पर्वत पर विदिशाओं में क्रम से ४ कूट और हैं पूर्वोत्तर दिशा में वैडूर्य कूट है, जिस पर रुचका नामक दिग्कुमारी महत्तरिका रहती है। पूर्व दक्षिण दिशा में रुचक कूट है, जिस पर रुचकाभा नाम की दिग्कुमारी महत्तरिका रहती है। पश्चिम दक्षिण दिशा में मणिप्रभा कूट है जिस पर रुचकांता नाम की दिग्कुमारो महत्तरिका रहती है। पश्चिमोत्तर दिशा में रुचकोत्तम कूट है, जिस पर रुचक प्रभा नाम की दिग्कुमारी महत्तरिका रहती है। इस पर्वत की विदिशाओं में ४ कूट और हैं। रत्न, रत्नप्रभ, सर्वरत्न और रत्नोच्चय। इन पर क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नाम की विद्युत्कुमारी महत्तरिका रहती है। ये आठों ही महत्तरिका यहां आकर तीर्थंकर की जन्म क्रिया को करती हैं। रुचक पर्वत के ऊपर चारों दिशाओं में ४ जिन मन्दिर हैं, पूर्वमुख नाम है—अन्जन गिरि पर अवस्थित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिन मन्दिर के समान इनका परिमाण है। १३ द्वीप विधान जब यहां भक्तजन करते हैं तो इस १३वें द्वीप पर इन चार जिनालयों का लक्ष्य रख कर जिनेन्द्र भक्ति करते हैं। इस प्रकार दूने-दूने वलय विस्तार वाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। तो मानुषोत्तर पर्वत जिसकी वजह से ढ़ाई द्वीप का विभाग बना है उसके भीतर मनुष्य हैं और वे मनुष्य दो प्रकार के हैं। वे किस तरह के हैं ? इसके उत्तर में सूत्र कहते हैं।

आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥

आर्य मनुष्यों में भेदों का प्रारम्भिक संकेत—मानुषोत्तर पर्वत से पहले ही अर्थात ढाई द्वीप में मनुष्य रहते हैं। मनुष्य दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। यहां लब्धि अपर्याप्त मनुष्यों का जिक्र नहीं है किंतु जो पर्याप्त हैं, जिनका परस्पर लोक व्यवहार है ऐसे मनुष्यों का प्रसंग चल रहा है। आर्य का अर्थ है—जो गुणों के द्वारा अथवा गुणवानों के द्वारा सेवित हों सो आर्य हैं याने अच्छे मनुष्य। गुणवान जिनको आदर दें, जिनमें गुण विशेष रहें वे आर्य कहलाते हैं। ये आर्य दो प्रकार के हैं—(१) ऋद्धि-प्राप्तार्य (२) अनऋद्धिप्राप्तार्य। जिन आर्यों को ऋद्धियां प्राप्त हो गई हैं, जिसका वर्णन आगे आयेगा, जैसे अतिशयज्ञान, शरीर बल, अणिमा, महिमा आदिक चमत्कार जिन्हें प्राप्त हुए हैं वे कहलाते हैं ऋद्धिप्राप्तार्य। और जिन्हें ऋद्धियां प्राप्त तो नहीं हैं मगर गुण सहित हैं, गुणवानों के द्वारा सेवित हो सकने योग्य हैं ऐसे मनुष्य अनऋद्धिप्राप्तार्य कहलाते हैं। इससे ऋद्धिप्राप्तार्य का वर्णन बहुत है अतएव पहले अनऋद्धिप्राप्तार्य का वर्णन किया है। ये आर्य ५ प्रकार के होते हैं—क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य और दर्शनार्य। क्षेत्रार्य का अर्थ है जो काशी, अयोध्या जैसे अच्छे नगरों में उत्पन्न हुए हैं वे क्षेत्रार्य कहलाते हैं। जात्यार्य-वे कहलाते हैं जो इच्छ्वाकुवंश जैसे अच्छे कुलों में उत्पन्न हुए हैं। कर्मार्य-जो अपनी क्रिया कर्त्तव्यों को सही करते हैं वे कर्मार्य कहलाते हैं।

कर्मार्यों में सावद्य कर्मार्य का वर्णन—कर्मार्य —ये ३ प्रकार के होते हैं—(१)सावद्य कर्मार्य (२) अल्पसावद्य कर्मार्य और (३)असावद्यकर्मार्य। सावद्य कर्मार्य ६ प्रकार के हैं। सावद्य कर्मार्य का अर्थ है कि जिन कर्मों में पाप भी होते हैं मगर एक गृहस्थाचार के नाते करना पड़ता है वे सावद्यकर्मार्य कहलाते हैं। तो चूंकि सावद्यकर्म ६ प्रकार के होते हैं तो सावद्य कर्मार्य भी ६ प्रकार के कहे गए हैं। कोई असी कर्मार्य कहते हैं अर्थात शस्त्रविद्या में निपुण हैं। दूसरों की रक्षा के लिए, देश रक्षा के लिए जो शस्त्र चलाने का कार्य करते हैं वे असिकर्मार्य कहलाते हैं। दूसरे हैं मसिकर्मार्य। मसि मायने स्याही। उसके साधन से जो कर्तव्य करने वाले हैं—लिखना, हिसाब लिखना, निबन्ध लिखना आदिक जो स्याही से करते हैं वे मसिकर्मार्य कहलाते हैं। तीसरे हैं कृषिकर्मार्य—जो खेती करते हैं, खेती से अपने देश का, गांव का कल्याण करते हैं गृहस्थी निभाने के लिये खेती का जिन्होंने साधन बनाया है वे कृषिकर्मार्य कहलाते हैं। विद्याकर्मार्य—पठन-पाठन करके शिक्षण देकर जो आजीविका चलाते हैं वे विद्याकर्मार्य कहलाते हैं। शिल्पकर्मार्य—काष्ठ, लोहा, मकानआदिक बनाने की कला जिनमें है ऐसे कलाकारों को शिल्पकर्मार्य कहते हैं। वणिककर्मार्य—व्यापार करके, अन्य जगह से वस्तु मंगाकर वितरण करना। अपने यहां से वस्तु संचय करना, आवश्यक स्थानों पर बेचना यह सब व्यापार है। इस व्यापार द्वारा जो आजीविका चलाते हैं वे वणिककर्मार्य कहलाते हैं। ये सब अपने अपने कार्य में कुशल हैं और शांति, धीरता, समता आदि सभी उपयोगी गुणों का आदर रखते हैं इस कारण ये सब आर्य ही हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अल्पसावद्यकर्मार्य व असावद्यकर्मार्यों का वर्णन—दूसरे हैं अल्पसावद्यकर्मार्य, अर्थात जिनकी चेष्टाओं में, जिनके कर्तव्यों में थोड़ा सा पाप रहता है ऐसे आर्य। वे होते हैं श्रावक, जो ५ अणु व्रत का पालन करते हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इनका एक देश पालन करते हैं वे श्रावक कहलाते हैं। असावद्यकर्मार्य हैं संयमी मुनि। राग से वे अलग हैं, वैराग्य से उनका भाव सना हुआ है फिर भी उनसे जो चेष्टायें बनती हैं, समितियों का पालन करते हैं तो उन कर्तव्यों में उनके पाप नहीं हैं इस कारण वे असावद्यकर्मार्य कहलाते हैं।

अब चारित्रार्य के प्रसंग में कहते हैं कि जो कर्मक्षय करने के लिये उद्यमी हैं। वैराग्य में परिणत हैं ऐसे संयमी मुनि चारित्रार्य कहलाते हैं ये दो प्रकार के होते हैं। (१) अभिगत चारित्रार्य और (२) अनभिगतचारित्रार्य। इन दोनों में भेद क्या है? कोई तो उपदेश की अपेक्षा रखकर आगे बढ़ रहे हैं और कोई इतना कुशल है कि उपदेश की अपेक्षा नहीं और चारित्र में बढ़ रहे हैं। अनभिगतचारित्रार्य कौन है? जो ये हैं ११वें और १२वें गुणस्थान वाले मुनि। चारित्र मोह के उपशम से अथवा क्षय से बाहरी उपदेश की अपेक्षा बिना अपने ही परिणामों की निर्मलता से चारित्र परिणाम से जो प्राप्त करते हैं वे हैं अपगत चारित्रार्य। जो उपशम से बढ़ते हैं वे हैं उपशांत कषाय और जो क्षय से बढ़ते हैं वे हैं क्षीण कषाय। इसमें नीचे सभी मुनि अनभिगत चारित्रार्य कहलाते हैं। अन्तर में चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम होने से बाह्य उपदेश के निमित्त विरक्त परिणाम जिनके आये वे अनभिगत चारित्रार्य कहलाते हैं।

दर्शनार्यों के प्रकार—दर्शनार्य कहते हैं सम्यग्दृष्टि जीवों को। जिनके सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ हैं वे दर्शनार्य हैं। दर्शनार्य १० प्रकार के हैं जो सम्यक्त्व के भेद हैं १० प्रकार के उन्हीं भेदों के कारण ये दर्शनार्य भी १० प्रकार के कहे गये।—(१) आज्ञारुचिदर्शनार्य—भगवान अरहन्त सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत तथा उनकी आज्ञामात्र से जिनको श्रद्धान हुआ है वे आज्ञारुचिदर्शनार्य कहलाते हैं। इनके भी श्रद्धान तो वही हुआ है जैसा सम्यक्त्व में होता है। विभावों से भिन्न अन्तस्तत्त्व का श्रद्धान, पर इस श्रद्धान में प्रथम कारण क्या रहा और किस तरह ये आगे बढ़े, उस पर दृष्टि दीजिये। तो उसमें प्रधानता मिलती है जिसके अरहन्त भगवान की आज्ञा पर प्रधानता होना, वह बढ़ बढ़ कर जिसने स्वभाव का अनुभव कर लिया है वह सम्यग्दृष्टि आज्ञारुचि दर्शनार्य कहलाता है। (२) मार्गरुचि—परिग्रहरहित मोक्षमार्ग का जिसने श्रवण किया है, चरणानुयोग विधि से जिसने निर्ग्रन्थ को अन्तः बाह्य क्रिया का उपदेश सुना है उसके श्रवण मात्र से जिसको सम्यक्त्व प्रकट हुआ है उन्हें मार्ग रुचि कहते हैं। सम्यक्त्व तो इनका वैसा ही है जैसा कि होता है, पर वह किस सिलसिले से मिला, उसकी प्रधानता में बताया है कि यह मार्गरुचि है। (३) तीसरा है उपदेश रुचि—तीर्थंकर बलदेव आदिक के पवित्र चरित्र का उपदेश हो, उसको सुन कर जिसका श्रद्धान बने, आत्मरुचि बने वह आत्मरुचि कहलाता है। (४) सूत्ररुचि—दीक्षा, मर्यादा, पिरूपणा, आचार के सूत्र इनके उपदेश सुने, इनकी विधियां देखे, उससे ही जिनको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ है उन्हें सूत्र रुचि कहते हैं। सम्यक्त्व सबका आत्मानुभव सहित ही है। किंतु उनकी उत्पत्ति किस सिलसिले में हुई है उसके भेद से ये भेद चल रहे हैं। (५) बीजरुचि—याने छोटे-छोटे बीजभूत आगम के पदों को ग्रहण करके सूक्ष्म अर्थ का तत्त्वार्थ का श्रद्धान बन गया है उन्हें कहते हैं बीज रुचि। (६) संक्षेपरुचि—जीवादिक पदार्थों का सामान्यतया सम्बोधन हो रहा हो, संक्षेप में कथन हो उससे ही जिनका श्रद्धान हुआ है वे हैं संक्षेप रुचि। (७) विस्तार रुचि—याने आगम का

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विस्तार जैसा अंगों में पूर्वों में है वहां जीवादिक अर्थ सुने अथवा बड़े विस्तार में उपदेश सुने। प्रमाण, नय आदिक का निरूपण सुने, उस निमित्त से जिनको श्रद्धान हो गया है वे विस्ताररुचि कहलाते हैं। (८) अर्थरुचि—याने वचन का विस्तार तो नहीं हो रहा, पर अर्थ वस्तु स्वरूप, उसका ग्रहण बना है, उस वस्तु स्वरूप की समझ से जिनके निर्मलता प्रकट हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टि अर्थ रुचि कहलाते हैं। (९) अवगाह रुचि —आचारांग आदिक १२ अंगों से जो सहित हैं और उनसे विविक्त है श्रद्धान जिनका वे अवगाह रुचि हैं। (१०) परमावगाढ़ रुचि— उत्कृष्ट केवलज्ञान, केवल दर्शन इनसे प्रकाशित जो जीवादिक अर्थ अर्थात इन उत्कृष्ट ज्ञानों द्वारा तत्त्व स्वरूप को जान जाने से जिनको निर्मलता प्रकट हुई है वे कहलाते हैं परमावगाढ़ रुचि। इस प्रकार वे अनऋद्धि प्राप्तार्य हैं।

ऋद्धि प्राप्तार्यों के प्रकारों के अन्तर्गत बुद्धि ऋद्धियों में प्रथम सप्त ऋद्धियों का वर्णन—ऋद्धि प्राप्तार्य ८ प्रकार के होते हैं—ऋद्धियाँ ८ जाति की होती हैं, उनसे सम्पन्न आर्य ८ प्रकार के कहे गए हैं। वे ८ जाति की ऋद्धियां ये हैं—(१) बुद्धि ऋद्धि, (२) क्रिया ऋद्धि, (३) विक्रिया ऋद्धि, (४) तपऋद्धि, (५) बल ऋद्धि, (६) औषधि ऋद्धि, (७)। रसऋद्धि, (८) क्षेत्र ऋद्धि। बुद्धिऋद्धि का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान विषयक चमत्कार को बुद्धिऋद्धि कहते हैं। ये बुद्धिऋद्धियाँ १८ प्रकार की हैं—(१) केवल ज्ञान ऋद्धि—यह तो ज्ञान का सर्वोकृष्ट चमत्कार है जहाँ तीन लोक, तीन काल के समस्त ज्ञेय युगपत प्रतिविम्बित होते हैं, ऐसा यह सर्वोकृष्ट चमत्कार है। (२) अवधिज्ञान ऋद्धि—परमावधिज्ञान सर्वावधिज्ञान सारे लोक को जानता है और उनमें इतना सामर्थ्य है कि कर्मों के क्षयोपशय, उपशम आदिक को निरख कर सम्यग्दर्शन तट का भी ज्ञान कर लेता है। (३) मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि—दूसरे के मन में रहने वाले विकल्प और विषयों को जो जान लेवे उसे मनः पर्यय ज्ञान कहते हैं। यह भी ज्ञान का एक माहात्म्य है। (४) बीजबुद्धि—जैसे भले प्रकार जोते गए और मथे गये खेत में योग्य समय में एक बीज बोया तो जैसे वह एक बीज अनेक करोड़ों बीजों का देने वाला है उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण और श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीनों का उत्कृष्ट क्षयोपशम भी होने पर आगम के एक बीज पद को ही ग्रहण करने से अनेक पदार्थों का बोध हो जाना। बीज बुद्धि है। (४) कोष्ठ बुद्धि—जैसे कोठे में रखी हुई बहुत सी धान्य बीज राशि जो ज्यों के त्यों रखी रहती है। जब चाहे तब उन्हें पूरे निकाल लो। तो जैसे कोठे में धान्य बीज ज्यों के त्यों रहते हैं घटते नहीं उसी प्रकार परोपदेश से बहुत-बहुत अर्थग्रन्थ बीजों का याने उन ज्ञेयों का बुद्धि में ज्यों का त्यों अवस्थान रहना अथवा परोपदेश से जो नहीं भी जाना गया था, बुद्धि की विशिष्टता के कारण बहुत से ग्रन्थ बीजों का जाने हुए ज्ञान का अवस्थान बना रहना कोष्ट बुद्धि है। (६) पदानुसारिता ऋद्धि-एक पद सुनकर आगे का, पीछे का, बीच का जो-जो भी पद है उन सबका ज्ञान कर लेना पदानुसारिता ऋद्धि है। (७) सम्भिन्नश्रोतृत्व—१२ योजन लम्बे, ९ योजन चौड़े इतने विस्तार में चक्रवर्ती का कटक तैयार हो और उसमें हाथी, घोड़ा, गधा, ऊंट, मनुष्यादिक बहुत होते ही हैं। उनके अक्षर वाली, अनक्षर वाली भाषायें वहाँ चलती भी रहती हैं। तो नाना प्रकार के शब्दों का जोकि एक साथ उत्पन्न हुये उन समस्त शब्दों का एक ही काल में ग्रहण करना, जान लेना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है। यह ऋद्धि कैसे बनी कि उन मुनियों में तपस्या विशेष हुई। उसके बल से ऐसा ज्ञान में चमत्कार आया कि मानो सभी जीव प्रदेश श्रवणेन्द्रिय रूप परिणम गए, ऐसे विशेष चमत्कार को सम्भिन्नश्रोतृत्व कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बुद्धि ऋद्धियों में ८ वीं ऋद्धि से १४ वीं ऋद्धि तक का वर्णन—(८ दूरात्‌आस्वादन—रस ज्ञान में उत्कृष्ट मर्यादा है ९ योजन की। याने ९ योजन दूर के रस का भी ज्ञान किया जा सकता है। करेगा तपश्चरण की शक्ति विशेष से। ऐसा रसना इन्द्रियावरण और श्रुतावरण और वीर्यान्तराय, इन तीन का क्षयोपशम विशेष हुआ है और अंगोपांग नाम कर्म का अच्छा लाभ है तो इस क्षेत्र से भी दूर के बहुत योजन दूर क्षेत्र से आये हुये रस का स्वाद कर सके, ऐसी सामर्थ्य जहाँ प्रकट हो उसे दूरात्‌ आस्वादन ऋद्धि कहते हैं। (९) दूरात्दर्शन रूप-देखने का जितना उत्कृष्ट क्षेत्र है उससे भी अधिक क्षेत्र रूप को देखने का सामर्थ्य हो जाना यह दूरात्दर्शन ऋद्धि है। तपश्चरण की शक्ति विशेष से ऐसा एक विशिष्ट चक्षुरिन्द्रियावरण का क्षयोपशम हुआ है साथ ही श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम [illegible] है और वीर्यान्तराय का क्षयोपशम हुआ है और अंगोपांग नामक कर्म [illegible] चक्षुरिन्द्रिय का विशिष्ट लाभ है जिससे निश्चित क्षेत्र से दूर के क्षेत्र के रूप का ज्ञान हो जाता है। (१०) दूरात्स्पर्शन-स्पर्श ज्ञान के क्षेत्र से भी क्षेत्र के बाहर के पदार्थ का स्पर्श ज्ञान करने का सामर्थ्य जहाँ होता है वह दूरात्स्पर्शन ऋद्धि है। (११) दूरात्घ्राणऋद्धि घ्राणेन्द्रिय द्वारा गंध का ज्ञान होता है और अधिक से अधिक कितने क्षेत्र तक का गंध लिया जा सकता है, उसकी उत्कृष्ट म्याद है कुछ। उससे भी अधिक दूरवर्ती पदार्थ का गंध लेने का सामर्थ्य हो जाना दूरात्घ्राण ऋद्धि है। (१२) दूरात्श्रवण सामर्थ्यता-शब्द सुनने के उत्कृष्ट क्षेत्र से भी दूर के क्षेत्र के शब्दों को सुनने का सामर्थ्य इस ऋद्धि में है। (१३) दसपूर्वित्व ऋद्धि—अंग पूर्व का ज्ञान जब ११ अंग ९ पूर्व का हो लेता है उसके पश्चात्‌ जब दशम पूर्व की साधना होती है तो उस काल में महारोहिणी आदिक तीन महाविद्यायें आती हैं। अपने-अपने रूप सामर्थ्य का आविष्कार करने वाली अनेक वार्ताओं के कहने में कुशल वेग वाले विद्या देवता आते हैं, उनसे विचलित न होना, अपने चरित्र को सही रखना और इस तरह अचलित रहकर दस पूर्व के दुस्तर समुद्र को पार कर लेना यह पूर्वित्व-ऋद्धि है। (१४) चतुर्दश पूर्वित्व—याने ११ अंग १४ पूर्व अथवा सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान में कुशल हो जाना, श्रुत केवली हो जाना सो यह है चतुर्दश पूर्वित्व ऋद्धि।

अष्टाङ्ग महानिमित्तज्ञता बुद्धि ऋद्धि का वर्णन–(१५) निमित्तज्ञता–८ महानिमित्तक हैं, जिनके नाम हैं—अन्तरीक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न। इन ८ महान निमित्तों का परिचय करके भविष्य के परोक्ष के अनेक सुख-दुःख की बातें बताना इन ऋद्धियों में है। जैसे अन्तरीक्ष ऋद्धि—सूर्य का ग्रहण हो, चन्द्र का ग्रहण हो, किसी नक्षत्र का उदय हो, अस्त हो, इन बातों से भूत कालीन, भविष्य फैले विभाग,बताना यह अन्तरीक्ष महानिमित्तज्ञता है। भौम निमित्त-ज्ञता–पृथ्वी कहीं कठोर है, चिकनी है रूखी है ऐसी पृथ्वी को देखकर अथवा पूर्व आदिक दिशाओं में कुछ सूत्र सुनकर वृद्धि-हानि, जीत-हार आदि का ज्ञान कर लेना और भूमि में, अन्दर में पड़े हुए सोना-चाँदी आदिक निधि की बात जान लेना सो भौम महानिमित्तज्ञता है। अंगनिमित्तज्ञता—अंग उपांग के दर्शन से भूत भविष्य वर्तमान काल में होने वाले सुख-दुःख आदिक की बात बताना, जान लेना अंग महानिमित्तज्ञता है। स्वर निमित्तज्ञता—अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक, शुभ-अशुभ शब्दों के सुन लेने से इष्ट अनिष्ट फलों की जानकारी कर लेना स्वर निमित्तज्ञता है। व्यञ्जन निमित्तज्ञता सिर, मुख, कंठ, छाती, हाथ आदिक में तिल, मसा आदिक चिन्हों को देखकर तीनों काल में हित अहित की जानकारी कर लेना व्यञ्जन निमित्तज्ञता है। लक्षण निमित्तज्ञता—शरीर में भी नाना चिन्ह पाये जाते हैं–श्री वृक्ष, स्वस्तिक, कलश आदिक रेखाओं द्वारा जो चिन्ह बन जाते हैं उनको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखकर त्रैकालिकस्थान, मान, ऐश्वर्य आदिकका विशेष ज्ञान करलेना लक्षण निमित्तज्ञताछिन्न—वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन आदिक अगर छिद जायें शस्त्र लेने से, वेतन लेने से या चूहा काट जाए तो उसे देखकर तीन काल विषयक लाभ-हानि, सुख-दु:ख आदिक का ज्ञान कर लेना छिन्न निमित्तज्ञता है। स्वप्न निमित्तज्ञता नीरोग पुरुष को जिसको वात पित्त कफ आदि का कोई दोई दोष नहीं है उसे पिछली रात्रि भाग में स्वप्न आया तो उन शुभ स्वप्नों को देखकर और अशुभ स्वप्नों को देखकर आगामी काल का जीवन-मरण सुख-दु:ख आदिक जान लेना सो स्वप्न निमित्तज्ञता है। शुभ स्वप्न कौन से कहलाते ? जैसे चन्द्र दिखा, सूर्य दीखा, समुद्र में नहाना दीखा, सकल पृथ्वी दिखी आदिक ये शुभ स्वप्न हैं और ये अशुभ स्वप्न हैं जैसे घी, तेल से मालिश करना, कुत्ता, गधा, ऊंट आदि पर चढ़ना, दिशाओं में गमन करना आदि। इन स्वप्नों के फल का ज्ञान कर लिया जाता है। तो ऐसे ८ प्रकार के महानिमित्तों में कुशलता पाना यह अष्टांग महानिमित्तता है।

बुद्धि ऋद्धियों में अन्तिम तीन ऋद्धियों का वर्णन—(१६) प्रज्ञाश्रवणऋद्धि – द्वादशांग और १४ पूर्व का अध्ययन भी न किया हो, लेकिन श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तिराय का ऊपर क्षयोपशम होने से ऐसी ज्ञानशक्ति का लाभ हो जाए कि जिससे अंग पूर्व विषयक बातों का निशंसय निरूपण किया जा सके उसे प्रज्ञाश्रवणऋद्धि कहते हैं। (१७) प्रत्येकबुद्धता—दूसरे के उपदेश बिना अपनी ही शक्ति विशेष से ज्ञान संयम के विधान में निपुणता हो जाना प्रत्येक बुद्धता है। (१८) बुद्धि ऋद्धि–वादित्व, बड़े-बड़े विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर दे सकना, दूसरों के कथन में दोष का निरीक्षण कर अर्थात् अपने वाक द्वारा बड़े-बड़े इन्द्रादिक को भी निरुत्तर कर देना सो तो वादित्व ऋद्धि है।

क्रिया ऋद्धियों का वर्णन—क्रिया विषयकऋद्धि दो प्रकार की होती है—(१) चारण ऋद्धि और (२) आकाशगामी ऋद्धि। क्रिया ऋद्धि का अर्थ है—क्रिया करना, चलना, इसमें चमत्कार आना। सो ये दो प्रकार के हैं। चारण ऋद्धि का अर्थ है कि कोई जल का आलम्बन लेकर चलता है तो जलकाय के जीवों की भी विराधना नहीं होती, और जिस भूमि पर पैर उठाकर, रखकर चलता है इस तरह जल पर भी पैर उठाकर रखकर गमन होता है, ऐसा ऋद्धिबल चारण ऋद्धि कहलाता है। जंघाचारण ऋद्धि—जमीन के ऊपर आकाश में चार अंगुल प्रमाण जंघा का उठाना रखना, उसकी शीघ्र क्रिया करने में चतुर और सैकड़ों योजन तक गमन करने में समर्थ वाली ऋद्धि जंघा-चारण ऋद्धि है। तन्तु चारण ऋद्धि—तन्तु पर गमन करने की कुशलता जिसमें आये वह यह ऋद्धि है। पुष्पचारण ऋद्धि—फूल पर चलें और फूलों को बाधा न हो। पत्रचारण ऋद्धि—पत्रों पर चलें और किसी भी पत्ते को बाधा न हो। ऐसी पृथ्वी, अग्नि सिखा आदिक का आलम्बन करके गमन होता है यह सब चारण ऋद्धि है। आकाशगामी ऋद्धि—ये साधु पद्मासन से बैठे हुए, किसी आसन से बैठे हुए, कायोत्सर्ग से खड़े हुये आकाश में गमन कर जायें। पैरों को उठाने धरने की कोई विधि नहीं होती और यों आकाश में गमन कर शीघ्र दूसरे स्थान तक पहुँच सकते हैं। ऐसी ऋद्धि का नाम आकाशगामी ऋद्धि।

विक्रिया ऋद्धियों का वर्णन—विक्रिया विषयक ऋद्धियां अनेक तरह की हैं जो ११ भेदों में संक्षिप्त हो जाती हैं। (१) अणिमा ऋद्धि - अपने शरीर को इतना छोटा बना लें कि वे मुरार के छिद्र में भी प्रवेश करके वहां बैठ जायें, और वहीं बैठे हुए चक्रवर्ती के परिवार की, विभूति की रचना कर लें, ऐसा अणु शरीर बना सकें ऐसी ऋद्धि को अणिमा ऋद्धि कहते हैं। (२) महिमा ऋद्धि—जो अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीर को पर्वत के समान महान बना लें। (३) लघुमाऋद्धि—जो अपने शरीर को इतना लघु बना लें कि कहो वायु की तरह हल्का हो जाये। (४) गरिमाऋद्धि—जो अपने शरीर को वज्र से भी अधिक वजन बनालें। (५) प्राप्तिऋद्धि—जोभूमि में बैठे-बैठे अंगुल के अग्र भाग से मेरु के सिखर, सूर्य आदिक का स्पर्श करलें। (६) प्राकम्प्यऋद्धि—जो जल पर भूमि की तरह गमन करें। भूमि पर जल की तरह तैरने, डूबने वगैरह की क्रियायें करें। (७) ईशत्त्वऋद्धि—जिस साधु को तीनों लोक की प्रभुता प्राप्त हो। (८) वशित्वऋद्धि—सर्व जीवों को वश में करने की लब्धि हो। (९) अप्रतिपात-ऋद्धि—जो पर्वत के मध्य से ऐसा गमनागमन करें जैसे कि आकाश में गमनागमन होता है। (१०) अन्तर्धानऋद्धि—जो अपने रूप को अदृश्य बना लें, किसी को दिखाई न दे ऐसी शक्ति जिनमें हो जाती है। (११) सकामरूपित्वऋद्धि—जो एक साथ अनेक आकार रूप बनाने की शक्ति रखते हों ऐसी ऋद्धि।

तपोतिशय ऋद्धियों का वर्णन—अब तप ऋद्धि का वर्णन करते हैं—जहाँ तपश्चरण विशेष के कारण अतिशय हो जाता है। ये ऋद्धि १० प्रकार की हैं—(१) उग्रतप ऋद्धि—एक उपवास, दो उपवास, ३, ४ आदिक पक्ष के उपवास, महीने का उपवास ऐसा योग होने पर भी किसी भी योग का का आरम्भ करके अपने जीवन भर उससे निवृत्त नहीं होते, थकते नहीं, असहन शील नहीं होते वे उग्र-तप ऋद्धि वाले हैं। (२) दीप्ततप ऋद्धि—बड़े-बड़े उपवास करने पर भी शरीर वचन मन का बल जिसका बढ़ा हुआ रहता है, दुर्गन्धरहित जिसका शरीर होता है। कमलवत सुगंधित जिसका निश्वास होता है। जिसकी महादीप्ति शरीर से कभी अलग नहीं होती वह दीप्ति तप ऋद्धि वाला है। (३) तप्ततपऋद्धि—तपे हुए लोहे की कड़ाही में डाले गये जल कणों की तरह शीघ्र ही जिसका अल्पाहार शुष्क हो जाता है और मल आदिक परिणमनों से रहित होता है वह तप्तऋद्धि वाला है। (४) महातप ऋद्धि—सिंहनि: क्रीडित आदिक बड़े-बड़े उपवास के करने में जो परायण हैं ऐसे यती महातप ऋद्धि वाले होते हैं। (५) घोरतप ऋद्धि—जिसका देह नाना प्रकार के ज्वर, खाँसी, स्वास, कुष्ट आदिक रोगों से संतप्त है फिर भी अनशन, कायक्लेश आदिक जिसके बराबर चल रहे हैं और जो डरावने मरघट, पर्वत गुहा, कंदर आदिक आदिक जगहों में निवास करते हैं, जहाँ यक्ष, राक्षस, पिशाच आदिक के विकरालरूप रहा करते हैं। जहाँ सिंह व्याघ्र आदिक अनेक वनचर जीव विचरण किया करते हैं, ऐसा आवास जिनको रुचता है, और वहाँ भी जो प्रसन्न रहते हैं वे घोर तपऋद्धि वाले हैं। (६) घोर पराक्रमऋद्धि—घोर तप ऋद्धि वाले की तरह जिसका एकान्त निवास है, और तपश्चरण योग में जो तत्पर हैं वेघोर पराक्रम ऋद्धि वाले हैं। (७) घोर ब्रह्मचर्य—चिरकाल से जिसका अचलित ब्रह्म-चर्य है और चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम से जिसके दु:स्वप्न भी नष्ट हो गये हैं, ऐसे चमत्कारी साधु घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि वाले हैं।

बलऋद्धियों का वर्णन—बलऋद्धि तीन प्रकार की होती हैं-(१) मनोबल ऋद्धि, (२) वचन बलऋद्धि और (३) कायबल ऋद्धि। जिसके नोइन्द्रियावरण का प्रकर्ष क्षयोपशम है, श्रुतावरण का भी ऊँचा क्षयोपशम है एवं वीर्यान्तराय कर्म का भी प्रकृष्ट क्षयोपशम है तो अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त आगम के अर्थ चिंतन करने में जो निपुण हैं, निर्मल हैं, वे मनोबल ऋद्धिवाले संत हैं। जिनके वचन-बल ऐसा अद्भुत प्रकट हुआ है कि अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त आगम का उच्चारण करने में समर्थ हैं सतत ऊँचे स्वर से उच्चारण करने पर भी जिसके थकान नहीं होती और कण्ठ भी हीन नहीं होता वे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वचनबल ऋद्धि वाले संत इनके नोइन्द्रियावरण कर्म का जिह्वा का, श्रुतावरण का और वीर्यान्तराय का अद्भुत क्षयोपशम होता है। यह समस्त आगम का उच्चारण अन्तर्मुहूर्त में ही कर लेता हैं। जिसके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम है जिसके अद्भुत कायबल प्रकट हुआ है, जो मासिक चातुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारण करने पर भी उपवास रखने पर भी श्रम और ग्लानि से रहित हैं वे कायबल ऋद्धि वाले हैं।

औषध ऋद्धियों का वर्णन—औषधिऋद्धि ८ प्रकार के होते हैं—इन ऋद्धियों से असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। (१) आमर्शन ऋद्धि—जिसके हाथ का स्पर्श, पैर आदिक का स्पर्श ही औषधिरूप बन गया है याने रोगीजन अंग का स्पर्श पायें तो असाध्य रोगों से भी निवृत्त हो जाते हैं। (२) क्ष्वेल-औषधि ऋद्धि—जिन साधु संतों का थूक ही औषधि बन गया, जिसके योग से असाध्य रोग भी निरोगता प्राप्त करते हैं। (३) जल्लऔषधिऋद्धि—पसीने के सहारे जो धूल मैल इकट्ठा हो जाता है उसे जल्ल कहते हैं। यह जल्ल ही औषधिरूप बन गया जिनके वे जल्ल औषधि वाले संत हैं। (४) मनोषधि ऋद्धि—कान, दांत, नासिका आदिक से उत्पन्न हुआ मल औषधि बन गया है जिनके वे मलोषधि ऋद्धि वाले सन्त हैं। (५) विडौषधि ऋद्धि—जिसका विट (विष्टा) औषधि बन गया है—वह विडौषधि ऋद्धि वाला सन्त है। (६) सर्वोषधि प्राप्त ऋद्धि—जिसके अंग प्रत्यंग, नखदंत, केस आदिक अवयव से स्पर्श करने वाली वायु भो औषधि को प्राप्त हो गई वह सर्वोषधि प्राप्त ऋद्धि वाला सन्त है। (७) आस्या विष ऋद्धि—तेज विष से मिला हुआ भी आहार जिसके मुख में पहुंचकर निर्विष हो जाता है अथवा जिसके मुख से निकले हुए वचनों को सुनने से महाविष से तपे हुये भी पुरुष निर्विष हो जाते हैं वे आस्याविष ऋद्धि वाले हैं। (८) दृष्टिविष ऋद्धि—जिसके देखने मात्र से ही बड़े तीव्र विष से दूषित भी पुरुष निर्विष हो जाते हैं वे दृष्टि विषऋद्धि वाले हैं।

रस ऋद्धियों का वर्णन—रस ऋद्धि ६ प्रकार की हैं—(१) आस्यविष बड़े तपस्वी यतीजन जिसको कदाचित ऐसा बोल देते कि मरजावो तो तत्क्षण ही महान् विष से अविभूत होकर मरण कर जाते हैं। ऐसी सामर्थ्य जहाँ होती है वह आस्याविष ऋद्धि वाला समझें। (२) दृष्टिविष—उत्कृष्ट तपश्चरण वाले यती क्रुद्ध होकर जिसको देख लें तो उसी समय ही तीव्र विष से अविभूत होकर मरण कर जायें ऐसी सामर्थ्य जिनमें है वे दृष्टिविष ऋद्धि वाले समझें। (३) क्षीराश्रवी ऋद्धि—नीरस भी भोजन जिसकी अंजुली में पहुंच जाता है तो वह भोजन क्षीर (दूध) रस के गुण को प्राप्त हो जाता है। अथवा जिसके वचन क्षीण पुरुषों को क्षीर की तरह सन्तर्पण करने वाले हैं वे क्षीराश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (४) मध्वाश्रवी—जिसकी अंगुली में पहुँचा हुआ नीरस भी आहार मधुर रस वीर्य वाला हो जाता है अथवा जिसके वचन दुःखित श्रोतावों के भी मधु-गुण को पुष्ट करते हैं वे मध्वाश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (५) सर्पिराश्रवी—जिसकी अंजुली में पहुंचा हुआ सूक्ष्म भी अन्न घृतरस शक्ति वाला हो जाता है अथवा जिसके वचन पुरुषों को घृतवत् सन्तर्पण करने वाले हैं वे सर्पिराश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (६) अमृताश्रवी—जिसकी अंजुली में पहुंचा हुआ भोजन कुछ भी हो अमृतपने को प्राप्त होता है या जिसके वचन प्राणियों को अमृत की तरह अनुग्राहक होते हैं वे अमृताश्रवी ऋद्धि वाले हैं।

क्षेत्र ऋद्धियों का वर्णन—क्षेत्र ऋद्धि दो प्रकार की होती हैं—(१) अक्षीणमहानस ऋद्धि और (२) अक्षीण महालय ऋद्धि जिन यतियों के लाभान्तराय का क्षयोपशम विशेष है उनके

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिए जिस रसोईघर से, जिस पात्र से भिक्षा दी जाती है, आहार दान दिया जाता है, उस पात्र से चक्रवर्ती की सेना भी भोजन कर जाए तो भी भोजन कम नहीं पड़ता, वे अक्षीणमहानस ऋद्धि वाले हैं। जिनको अक्षीण महालय ऋद्धि प्राप्त हैं वे मुनि जहां रहते हों यदि वहाँ देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सब पहुँचे, एक दूसरे को बाधा न देते हुवे रह जायें और सुख पूर्वक रहें वे सब अक्षीण महालय ऋद्धि प्राप्त आर्य हैं।

अन्तर्द्वीपज म्लेच्छों के आवास—म्लेच्छ मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—(१) अन्तर्द्वीपज और (२) कर्मभूमिज। लवण समुद्र में जो पर्वत के किनारे पर या दिशाओं में जो स्थान बने हैं उन स्थानों में रहने वाले म्लेच्छ अन्तर्द्वीपज हैं और भरत क्षेत्र आदिक क्षेत्रों में कर्मभूमियों में रहने वाले म्लेच्छ कर्मभूमिज हैं। अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ एक प्रकार के खोटे भोग भूमि वाले हैं याने उनको अपनी आजीविका के लिए खेती व्यापार आदिक कोई कर्म नहीं करने पड़ते, वहाँ ही जो कुछ प्राकृतिक पौदगलिक भोजन पड़ा होता है, जो सुगमतया मिलता है उसे खाकर तुष्ट रहते हैं और उनकी आयु एक जघन्न भोगभूमिया से मिलती-जुलती रहती है। उनकी ऊंचाई भी उन्हीं से मिलती-जुलती है और जो कर्मभूमिज म्लेच्छ हैं वे जैसे पवन, भील, चाण्डाल आदिक होते हैं ये सब म्लेच्छ कहलाते हैं। तो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहाँ-कहाँ हैं इसका वर्णन करते हैं। जम्बूद्वीप को घेरे हुये लवण समुद्र में ८ दिशाओं में याने ४ दिशायें और चार विदिशा और प्रत्येक दिशाओं के बीच के अन्तर में अन्तर्द्वीपज पाये जाते हैं। और जगह भी हैं जिनका वर्णन भी किया जायेगा पर क्रम से वर्णन चल रहा है तो लवणोदधि समुद्र के ८ दिशाओं में और उनके बीचोबीच ८ इस तरह १६ स्थान यहाँ हैं और हिम्मान पर्वत के दोनों ओर दोनों तटों पर अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ के आवास हैं और विजयार्द्ध पर्वत भी दो पड़े हुये हैं एक भरत में और दूसरा ऐरावत में। उन दोनों विजयार्द्ध पर्वतों में भी आखिरी-आखिरी भाग में जो लवण समुद्र के भीतर पहुँचे हैं वहाँ ये म्लेच्छ हैं। तो इस तरह ये ८ स्थान हुये २ हिम्मान पर्वत के आखिरी, २ शिखरी पर्वत के आखिरी और २-२ विजयार्द्ध के आखिरी, इस तरह ८ स्थान हुये। तो ये सब मिलकर २४ स्थान हो जाते हैं। तो ये २४ जगह लवण समुद्र में हैं जहाँ ये म्लेच्छ रहा करते हैं। अब दिशाओं में जो द्वीप ८ बताये गये वे कितनी दूर पर हैं याने जम्बूद्वीप की जो वेदिका हैं, जिसके बाद लवण समुद्र शुरू होता है उस वेदिका से तिरछे ५०० योजन जाकर समुद्र में प्रवेश कर वहाँ ये ४ स्थान पाये जाते हैं। और विदिशाओं में इसी वेदिका से ५५० योजन समुद्र के भीतर जाकर पाये जाते हैं तो चार स्थान ये हुये। इसी प्रकार इन दिशा विदिशाओं के बीच में जो ८ स्थान हैं वे भी वेदिका से ५५० योजन समुद्र में जाकर बने हुये हैं। इसी प्रकार जो हिमवान शिखरी पर्वत के कोनों में म्लेच्छों के स्थान हैं तो वे वेदिका से ६०० योजन तिरछे समुद्र में जाकर पाये जाते हैं। इसी प्रकार विजयार्द्ध पर्वत के भी दोनों कोनों में वेदिका से ६०० योजन समुद्र में जाकर पाये जाते हैं। इस तरह इन अन्तर्द्वीपज म्लेच्छों के आवास स्थान बताए गए।

अन्तर्द्वीपज म्लेच्छों की विशेषतायें व कर्मभूमिज म्लेच्छों का संकेत—अब ये म्लेच्छ किस आकार के होते हैं उनकी क्या-क्या विशेषतायें हैं यह बतलाते हैं, पूर्व दिशा में जो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं वे एक टांग वाले हैं। हैं ये सब जघन्य भोग भूमि से मिलते-जुलते आराम वाले, इनको क्लेश कुछ नहीं। खाने की सामग्री पड़ी है और बोलने-चालने को वहाँ ये सब हैं ही। इन सबके स्त्री भी होती हैं। तो दुःख इन्हें कुछ नहीं है, मगर ये म्लेच्छ हैं, इनका व्यवहार आचार सब म्लेच्छों की भांति का

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। पश्चिम दिशा में ये म्लेच्छ पूंछ वाले हैं। हैं ये सब मनुष्य और लौकिक हिसाब से इन्हें कोई कष्ट भी नहीं है, मगर इनके पाप का ऐसा उदय है कि इनके शरीर का रूप भद्दा पाया जाता है। उत्तर दिशा में रहने वाले म्लेच्छ गूंगे हैं, ये मुख से नहीं बोल पाते, दक्षिण दिशा में रहने वाले, इन मलेच्छों के सींग पाये जाते हैं, इनके साथ पूर्वादिक दिशाओं में रहने वाले ये म्लेच्छ कोई तो खरगोश के जैसे कान वाले हैं कोई पूरी जैसे कान वाले हैं, कोई इतने लम्बे-चौड़े कान वाले हैं कि उन्हीं कानों पर सो जायें और एक कान ढक लें जैसे यहाँ कोई चादर ओढ़ कर सोता हो। कोई मनुष्य लम्बे कान वाले हैं। विदिशाओं में पाये जाने वाले ये अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ क्रमशः कोई घोड़े जैसे मुख वाले हैं, कोई सिंह जैसे मुख वाले हैं, कोई कुत्ते जैसे मुख वाले हैं, कोई कौवा जैसे मुख वाले हैं, कोई सूकर जैसे मुख वाले हैं, कोई व्याघ्र जैसे मुख वाले हैं, कोई उल्लू जैसे मुख वाले हैं, और कोई बन्दर जैसे मुख वाले हैं। इन दिशा विदिशाओं के अन्तराल में जो अन्तर्द्वीप हैं, म्लेच्छों के आवास हैं उनमें कोई मेघ की बिजली जैसे मुख वाले हैं। शिखरी पर्वत के दोनों तटों पर अन्त में जो आवास हैं वहां रहने वाले म्लेच्छ मच्छ जैसे मुख वाले हैं और दूसरे गोल जैसे मुख वाले हैं। हिम्मान पर्वत के दोनों किनारों पर जो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छों के आवास हैं उनमें रहने वाले म्लेच्छ हाथी जैसे मुख वाले हैं और दर्पण जैसे मुख वाले हैं। उत्तर विजयार्द्ध के उत्तर ऐरावत क्षेत्र में पड़े हुए विजयार्द्ध के दोनों किनारों पर कोई गाय जैसे मुख वाले हैं कोई भैंसा जैसे मुख वाले हैं। भरत क्षेत्र में पड़े हुये विजयार्द्ध पर्वत के किनारों पर एक टाँग वाले, मिट्टी का आहार करने वाले, गुफाओं में रहने वाले हैं। बाकी के ये अन्तर्द्वीप म्लेच्छ पुष्प फलों का आहार करने वाले हैं। वृक्षों पर रहते हैं। ये सभी के सभी अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ एक पल्ल की आयु वाले हैं। ये सब म्लेच्छ भोग भूमि वाले कहलाते हैं किन्तु पाप के योग से इन्हें यह खोंटी भोग भूमि मिली है। एक पल्ल बहुत बड़े विस्तार का है जो उपमा द्वारा जाना जा सकता है कि मानो दो हजार कोश का लम्बा, चौड़ा, गहरा गड्ढा हो और उसमें बहुत कोमल मेढे के बालों के इतने छोटे-छोटे टुकड़े कि जिनका कतरनी से दूसरा हिस्सा न हो सके, ये भर दिये जायें और उस पर हाथी फेरकर ठसा ठस भर दिये जावें, फिर उन प्रत्येक टुकड़ों को प्रत्येक १०० वर्ष में एक टुकड़े के हिसाब से निकाला जाये तो सभी रोम खण्ड निकालने में जितना काल बंठे उसका नाम है व्यवहार पल्य, उससे असंख्यात गुणा है उद्धार पल्य और उससे असंख्यात गुणा काल अद्धा पल्ल का है। ऐसी एक अद्धापल्य प्रमाण आयु होती है। ये चौबीसों अन्तर्द्वीप जो म्लेच्छों के आवासभूत हैं वे लवण समुद्र के जल-तल से याने ऊपर जिस जगह पानी है वहाँ से एक योजन ऊँचे हैं इस तरह २४ द्वीप लवण समुद्र में पाये जाते हैं। इसी तरह दूसरे तट पर जो घातकी खण्ड-द्वीप से लगा है वहाँ-वहाँ २४ पाये जाते हैं और कालोद समुद्र में भी दोनों किनारों पर २४-२४ पाये जाते हैं। इस तरह ये सब अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ ९८ जगहों में हैं। कर्मभूमिज म्लेच्छ जैसे यहाँ पाये जाते हैं। सक, यवन भील आदिक—आर्य और म्लेच्छ ऐसे ही आर्य और म्लेच्छ वहाँ होते।

आर्य म्लेच्छ सम्प्रदायों की सिद्धि—एक शंकाकार के मन में यह आशंका हुई है कि क्या ऐसा सम्भव है कि आर्य की संतानों में आर्य-आर्य ही होते जायें और म्लेच्छ की संतान में म्लेच्छ-म्लेच्छ ही होते जायें ? यह कैसे सम्भव है ? मनुष्य हैं भिन्न-भिन्न हैं, उनकी प्रकृति निराली-निराली है, तो ये सम्प्रदाय कैसे बन सकते हैं ? तो उसके उत्तर में कहते हैं कि सम्प्रदाय का बना रहना, चलते रहना असिद्ध नहीं है। क्योंकि जैसे जो सम्प्रदाय को न माने तो वह नास्तिक याने संतति कुल

http://sahjanandvarnishastra.org/

परम्परा आचार परम्परा, धर्म परम्परा को न माने वह कहलाता है नास्तिक। तो कम से कम इतना तो देखा ही जा रहा है कि ऐसे नास्तिकों का भी सम्प्रदाय बना हुआ है तो वह भी तो सम्प्रदाय है, उसका भी तो व्यवहार चलता जा रहा है। तो ऐसे ही संतान से आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था समझ लेना चाहिए। यदि कोई कहे कि मनुष्यों का संतान तो सदा आर्यपना और म्लेच्छपना से सूना देखा गया हैं तो ऐसा मानने वालों को याने उन नास्तिकों को कम से कम इतना तो प्रत्यक्ष से भी सिद्ध हो गया कि सम्प्रदाय का व्यवच्छेद न होना यह भी तो संतान है। मनुष्यों के मनुष्य ही तो पैदा होते है, पशुओं के पशु ही तो पैदा होते हैं। तो ये भी तो एक संतान हुये। तो इससे कम से कम यह तो मानना पड़ा कि संतति सम्प्रदाय की परम्परा यह भी कोई चीज है, और जैसे नास्तिक लोग यह समझते हैं कि जैसे मैं नास्तिक हूँ इसी प्रकार मेरे पूर्वज भी सभी नास्तिक थे, जो जाति व्यवस्था का निराकरण करने वाले थे। इसमें भी नास्तिकों की संतति ही तो सिद्ध हो गई। इस पर नास्तिक कहते हैं कि वाह ठीक कहा गया है। हम नास्तिकों का सम्प्रदाय ही वास्तविक है, प्रमाणभूत है, पर आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था का प्रतिपादन करना यह व्यर्थ है। उत्तर में कहते कि यह तुम्हारा कल्पित एक मनोरथ ही है, ऐसा प्रतीति में नहीं आ रहा कि तुम्हारा ही सन्तान सही है। जब तुम्हारा संतान है तो नास्तिकों का भी है, आर्य, म्लेच्छ का भी है। शंकाकार कहता है कि जब मनुष्य उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होने ही उस बच्चे में न आर्यपना है न म्लेच्छपना है। तो यह बात तो प्रतीति में आ रही है, तब तो मान लेनाचाहिये कि आर्य और म्लेच्छ की इतनी व्यवस्था और संतति नहीं है। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि ऐसा मानने वालों के भी इतनी तो प्रसिद्धि हो गई कि पहले माता-पिता आर्य है और इन आर्यों की ये संतान हुये हैं। भले ही उस संतान में चूंकि बालक हैं, शिशु हैं तो उसमें संस्कार व्यक्त नहीं हो पा रहे, मगर कुल परम्परा तो है। इस तरह आर्य और म्लेच्छ भाव की सिद्धि होती है। लोक व्यवहार में भी कहा जाता है कि ये अच्छे कुल में उत्पन्न हुये ये खोटे कुल में उत्पन्न हुये। अगर यह न माना जाये तो सारे व्यवहार का विरोध हो जाएगा।

वास्तविकता के अभाव में अन्यत्र अध्यारोप न हो सकने से कल्पना में सर्वथा अवस्तुत्व का अभाव—शंका व्यवहार का विरोध होता हो तो होने दो वह सब तो कल्पना से माना गया व्यवहार है। उत्तर—केवल कल्पना मात्र से व्यवहार नहीं होता, उसमें भी कोई न कोई कारण है। व्यवहार का बीजभूत कुछ बात अवश्य होती है। अगर उस व्यवहार का बीज कोई तथ्य का न हो तो कल्पना ही नहीं बन सकती। कल्पना इस तरह की जाती है कि कहो पर किसी के वास्तव में कोई बात देखी गई हो तो उसका दूसरी जगह आरोप करने का नाम है कल्पना। सो कल्पनायें दो प्रकार की हुआ करती है—(१) मुख्य कल्पना और (२) उपचरित कल्पना। तो जब यह देखा जा रहा है कि अच्छे-अच्छे आचार वालों की परम्परा में कोई उत्पन्न हो और वह भी अपने कुल सिद्ध बात को जीवन में निभाता जाता है तो यह सब सम्प्रदाय की कल्पना वास्तविक ही तो हुई। अगर निर्वीज हो कल्पना तो कल्पना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। नहीं तो समस्त उपदेशों को कह दिया जाएगा कि ये सब निर्वीज हैं। कल्पना मात्र हैं। प्रकृति पुरुष मानना, सत्व, रज, तम मानना ये सब कल्पित हैं, सब मिथ्या हैं, इस तरह कोई कल्पना ही न बन सकेगी। तो कल्पना कोई असत्य होती कोई सत्य होती। किसी जगह कोई सत्य बात देखी, उसका आरोप दूसरी जगह कर लिया तो यों कल्पना भी बन जाती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आर्यत्व की गुणनिबन्धनता व म्लेच्छत्व की दोषनिबन्धनता—प्रकरण यह चल रहा है आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था परम्परा कैसे चलती रहती है? इसकी सिद्धि की जा रही है ? आर्यपना तो गुण-मूलक हैं याने जिस कुल में गुणमयी व्यवहार चलता है वे आर्य कहलाते हैं। जिस कुल में दोषमूलक व्यवहार चलता है—शराब,मांस आदि का व्यवहार और और भी आचरणहीनता, उससे म्लेच्छपने की परम्परा चलती, और यह बात जब, प्रत्यक्ष से ही देखी जा रही है और अनुमान से भी सिद्ध है तो उसमें शंका की कोई बात नहीं। अपनी संतान में होने वाली व्यवस्था मनुष्यों के पाई जा रही है। खुद ही अनुभव कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन आदि गुणों के कारण तो आर्यपने की व्यवस्था है और मिथ्यात्वादिक दोषों के कारण म्लेच्छपने की व्यवस्था है, और संतान में आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था समझना हो तो उनका व्यापार, उनके वचन, उनकी कामचेष्टा, उनका कार्य उसको देखकर की जा सकती है।

जाति की सर्वगतता व नित्यता की मीमांसा--शंका–आर्यत्व, म्लेच्छत्व, ब्राह्मणत्व, गोत्व क्षत्रिय आदि जाति, तो सर्वव्यापक हैं, नित्य हैं, सब जगह मौजूद हैं। सब काल में रहते हैं। जैसे एक आकाश सब जगह व्यापक है, सदा व्यापक है, नित्य है, ऐसे ही यह जाति सदा व्यापक है, नित्य है, क्योंकि इसके उत्पन्न करने वाला न कोई कारण है, न विनाश करने का कोई कारण है। जाति को कौन उत्पन्न करता है ? भले ही मनुष्य उत्पन्न हुआ, पर जाति तो उत्पन्न नहीं की किसी ने और न उसका विनाश किया, इससे सिद्ध होता कि जाति सर्वगत है, नित्य है। ऐसी शंका करने वाले जरा यह बतायें कि जाति को व्यापक जो मान लिया गया है—ब्राह्मणत्व जाति तो जितने ब्राह्मण हैं, अलग-अलग बैठे हैं, गाँव में हैं तो चिपके हुए तो हैं नहीं एक दूसरे से। कोई फर्लांग भर दूर बैठा है। कोई १०-५ गज दूर रह रहा है तो उनका जो अन्तराल पड़ा याने जहाँ कोई पुरुष नहीं है उस अन्तराल में क्यों नहीं जाति का ज्ञान होता ? जैसे आकाश व्यापक है तो सब जगह आकाश का बोध है ऐसे ही यदि जाति व्यापक है तो सब जगह जाति मालूम होनी चाहिये।

अभिव्यंजक सामग्री में ही जाति की प्रतीति मानकर अपना बचाव करने वाले शंकाकार की शंका व समाधान—यदि शंकाकार यह कहें कि जाति तो व्यापक है मगर मालूम यों नहीं पड़ता कि उस जाति को प्रकट करने वाली जो विशेष चीजें हैं, मनुष्य हैं वे वहाँ नहीं हैं, इसलिए वहाँ की जाति प्रकट नहीं हो रहीं। तो वे यह बतायें कि जो जाति प्रकट होती है कहीं भी तो वह पूरी जाति प्रकट होती है या जाति का कोई हिस्सा कहीं प्रकट हो गया कोई कहीं प्रकट हो गया। यदि कहा कि पूरा ही प्रकट हुआ है तब वही देश, तब सब जगह जाति का ज्ञान होना चाहिद। उन व्यक्तियों को अन्तराल में जाति का बोध होना चाहिये, इसलिये पहला पक्ष तो बना नहीं। अगर कहो कि जाति का कोई देश कहीं प्रकट होता है, कोई हिस्सा कहीं प्रकट होता है तो इस तरह अगर १-१ देश जाति का अंश प्रकट हो तो जाति अवयव वाली हो गई। याने जाति में कितने ही अङ्गोंपाङ्ग हैं। उनमें से कोई कहीं प्रकट हो गया तो ऐसा मानने पर प्रत्यक्ष बाधा है। अब शंकाकार कहता है कि भाई व्यक्ति तो पूरे के होते हैं मगर जाति जो सर्वत्र नहीं पाई जा रही वह साम्रगी के अभाव से नहीं पाई जा रही जैसे ब्राह्मण जाति ढूंढ़ना है तो जहाँ-जहाँ ब्राह्मण पुरुष बैठे हैं वहाँ जाति मिलेगी। बीच का जो आकाश पड़ा है वहाँ ब्राह्मण हैं नहीं इसलिये प्रकट नहीं हो रहे। तो यह शंका बड़ी मजाक भरी है। यदि उनके उत्तर में कोई ऐसा कहने लगे कि हमारी जो यह घट जाति है घड़े बनाना मिट्टी के तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जितने घड़े हैं उनकी भी तो एक जाति हो गई । तो घट जाति सब जगह व्यापक है । कोई कहे कि यहाँ क्यों नहीं दिखते घट ? तो उसका उत्तर शंकाकार की तरह दे दिया जायेगा कि घट जाति तो सब जगह व्यापक है मगर उसकी सामग्री जहाँ है वहाँ ही व्यक्त होती है । यदि शंकाकार कहे कि इसमें तो प्रत्यक्ष से विरोध है । घट जाति इस सूने आकाश में कहाँ दिख रही है ? जहाँ घड़ा नहीं है वहाँ घड़ा जाति तो नहीं दिखती । तो यह हो अब शंकाकार खुद दे दे । क्षत्रिय जाति कहा तो जहाँ क्षत्रिय लोग बैठे वहीं दिखते हैं क्षत्रिय । अगर एक होती सर्वव्यापक तो फिर बीच के आकाश में क्यों नहीं क्षत्रिय जाति मिल जाती ? तो कल्पित सर्वगत जाति का कुछस्वरूप ही नहीं बनता ।

जाति का स्वरूप—यह जानना है कि जाति है क्या चीज, तो सुनो—जाति कहलाती है सदृश लक्षण याने जितने घड़े हैं वे सब मिट्टी के बनते हैं । तो मिट्टी से रचित हैं इस दृष्टि से सब घड़ों में सदृशपना है । तो जो सदृशपना है उसी का नाम जाति है । कोई घट से अलग जाति का एक हो और सब घट में पड़ा हो ऐसा नहीं है । ब्राह्मण जाति कहा तो ब्राह्मण सभी में समानता सोच ली गई कि सब ब्राह्मण हैं, ऐसी जो सदृशता है उसी का नाम जाति है । जाति कोई अलग चीज नहीं । तो जाति नाम है सादृश्य सामान्य का और सादृश्य सामान्य लोगों को साफ प्रतीत होता है कि यह इसके समान है, यह इसके समान है । तो समानता का जो बोध होता है वह जाति का बोध होता है । अब यहां शंकाकार कहता कि जैसे एक यह जाति है तो हमको तो ऐसा ही बोध हो रहा है कि यहवही मनुष्य है, यह वही मनुष्य है, वह ही मनुष्य है, वह ही मनुष्य है, तो समान तो नहीं ज्ञान में आया । इसमें एकत्व ज्ञान में आया, मनुष्य-मनुष्य सब एक हैं । सदृशता तो नहीं विदित होती । तो उत्तर में कहते हैं कि भाई बोध भी तो सदृशता का ही हो रहा है । जिस किसी भी मनुष्य को देखते हैं तो ज्ञान तो ऐसा ही हो रहा कि वैसा ही मनुष्य यह है वैसा ही यह है मगर बोलने की प्रथा यह है कि यह वही है । जैसे अन्न बहुत हैं तो एक जाति गेहूँ भी कहलाती है । अब हर दाने को हर एक कोई यह कहेगा कि वही गेहूँ है मगर दाने-दाने तो निराले हैं और बात तो समानता की है । वे गेहूँ के दाने तो समानहैं मगर यह कहने का व्यवहार नहीं । उपचार व्यवहार यह है कि यहकहदेते कि यह भी वही गेहूं है मगर वे दो एक हो सकते हैंक्या ? तो उनमें बात तो समानता की है मगर लोग उपचार करते हैं सो बात यह है कि एकपना दो प्रकार का होता है —(१) मुख्य और (२) उपचार । अब जैसे कोई मनुष्य बचपन, जवानी, बुढ़ापा इन तीनों दशाओं में यह देखा जाता है कि यह वही मनुष्य है । जवान को देखो एक ही मनुष्य का तो बोध होता है कि जो बचपन में था वही का वही अब है । तो वहां जो एकपने का ज्ञान है वह तो वास्तविक है, मुख्य है और भिन्न-भिन्न ५० मनुष्यों में यों कहना कि यह वही मनुष्य है, यह भी वही है तो यह तो झूठ बात हुई । तो न्यारे-न्यारे हैं लेकिन फिर भी कहा जाता हैं तो यह उपचरित एकत्व है । तो मुख्य एकत्व तो अर्द्धता सामान्य है । अर्द्धता सामान्य उसे कहते हैं जहां एक ही पदार्थ के पूर्व और उत्तर पर्यायों में उस एक द्रव्य का बोध होवे । वह है अर्द्धता सामान्य । तो वहां एकपना तो सही है , मुख्य है । अगर सौ गायें खड़ी हैं और उन प्रत्येक गायों में कोई कहे कि यह भी वही गाय है, यह भी वही गाय है तो कहा जाता है मगर उसके चित्त में यह बात बैठी है कि उस गाय के सदृश है, यह भी उसके सदृश है । तो कहीं सच्चा एकत्व पाया गया, उसका एकत्व किया सदृशता में तो उस एकत्व को उपचारित कहते हैं । उस समय सादृश्य सामान्य सही है और उस ही का नाम जाति है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सादृश्य सामान्य लक्षणाजाति का स्याद्वाद से नित्यत्व अनित्यत्व आदि—अब यह समझिये कि जो यह कहा था कि जाति नित्य होती है सो देखो जितने भी ब्राह्मण है, या जितनी भी गायें हैं वे अनित्य हैं या सदा रहेंगी ? अनित्य हैं। मर जाती हैं। तो अनित्य गाय से इस सदृशता का तादात्म्य है। इस जाति का तादात्म्य है। तो जब अनित्य व्यक्ति में वह जाति है तो व्यक्ति अनित्य है तो जाति अनित्य है। दूसरी बात —चूंकि सदृशता मरती नहीं है, गाय तो गुजर जाती है। गुजर जाय बहुत सी गायें खड़ी हैं, नई-नई गायें आतीहैं तो सदृशता तो कभी मिटती नहीं, इस कारण जाति नित्य है माने जाति के बारे में ऐसा एकान्त कर लेना कि नित्य ही है सो असंगत है। व्यक्ति के तादात्म्य की दृष्टि से तो वह सदृश्य लक्षण जाति अनित्य है और चूंकि सादृश्य सामान्य यह कभी मिटेगा नहीं, गाय मिटती जाती और गायें होती जातीं और सदृशता का बोध करने वाले मनुष्य भी पैदा होते जाते तो सदृशता के ज्ञान की परम्परा चले तो बराबर चलती है, इस दृष्टि से जाति नित्य है। और फिर जाति चूंकि अनेक प्रकार के पदार्थों की सदृशता का नाम है तो कोई जाति मूर्त है कोई जाति अमूर्त है। गाय, मनुष्य, पशु आदिक में जो जाति है वह मूर्त है, आकाश, धर्मद्रव्य अधर्म द्रव्य, इनमें जो अमूर्तपने की जाति है वह अमूर्त है। तो जाति के विषय में भी कोई एकांत नहीं किया जा सकता है। इस तरह सदृशता लक्षण वाली जाति सिद्ध है और सम्प्रदाय का विच्छेदन होना यह भी सिद्ध है। तो इसमें आर्यपना और म्लेच्छपना का जो वर्णन किया गया वह सब समीचीन है। इस सूत्र में जो आर्य बताये गये हैं वे कर्मभूमि में ही पाये जाते हैं और जो म्लेच्छ दो प्रकार के बताये गए हैं—(१) अन्तर्द्वीपज (२) कर्मभूमिज, तो कर्मभूमिज म्लेच्छ कर्मभूमि में पाये जाते हैं। ऐसा प्रसंग सुनकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि वे कर्मभूमियां कौन हैं जिनमें ऐसे मनुष्य पाये जाते हैं ? इसका समाधान करने के लिये सूत्र कहते हैं।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

कर्मभूमि के स्थान—देव कुरु और उत्तर कुरु के सिवाय शेष भरत ऐरावत और विदेह ये कर्मभूमियां कहलाते हैं। देव कुरु और उत्तर कुरु विदेह क्षेत्र में हैं। सो देव कुरु में उत्कृष्ट भोग-भूमि हैं और उत्तर कुरु में उत्कृष्ट भोगभूमि है। इतने हिस्से को छोड़कर बाकी जितना भी सारा विदेह है वह सब कर्मभूमि है और भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र ये दो कर्मभूमि हैं ही। भरत और ऐरावत में भी जिस काल में भोगभूमि आती है, पहला, दूसरा, तीसरा काल होता है उस समय ये भी भोगभूमि हो जाते हैं। लेकिन ये अनवस्थित भोगभूमि हैं कर्मभूमि की ही यहां प्रधानता है। यहाँ एक उत्थानिका यह भी सही है कि इस ग्रन्थ में सबसे पहले मोक्षमार्ग बताया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की पूर्णता मोक्ष का मार्ग है। तो मोक्षमार्ग कितने क्षेत्रों में होता है ? क्या सब क्षेत्रों में होता है ? तो उसका उत्तर मिलता है कि कर्मभूमि में ही मोक्षमार्ग बनता है, क्योंकि भोगभूमि में भी यद्यपि मनुष्यों के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बन जाता है किन्तु चारित्र नहीं होता। भोगभूमि ही तो हैं। वहाँ युगल पैदा होते हैं, और वे ही पुरुष-स्त्री होते हैं। उन्हें आजीविका की कुछ फिक्र नहीं है, थोड़ा उनका आहार है, वह कल्प वृक्षों से प्राप्त हो जाता है इसलिये भोग-भोग में ही वे लिप्त रहते हैं। उनके चारित्र नहीं होता। तो मोक्षमार्ग की उत्कृष्ट साधना करने वाले जीव कहाँ-कहाँ होते हैं यह बताने के लिये भी इस सूत्र की आवश्यकता थी। तो सूत्र द्वारा यह दर्शा दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया कि देव कुरु और उत्तर कुरु को छोड़कर बाकी का सारा विदेह और भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र ये कर्मभूमि कहलाते हैं।

कर्मभूमित्व की सार्थकता—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि कर्मभूमियां हैं, ऐसा विशेषण सही नहीं बनता, क्योंकि ८ प्रकार के जो कर्म हैं उनका व्यापार बंध कर्म का फल भोगना यह तो सभी मनुष्य क्षेत्रों में हैं। भोगभूमियां हैं तो वहाँ पर भी कर्मबन्ध, कर्मोदय, कर्मफल भोगना, यह सब तो चलता ही रहता है, फिर उसको ही कर्मभूमि कहना शेष को नहीं, यह छाँट कैसे बन सकती है ? अब इसका समाधान करते हैं कि देखिये कर्म दो प्रकार के होते हैं—शुभ कर्म और अशुभ कर्म, अर्थात् पुण्यकर्म और पापकर्म। तो पुण्य का फल जहाँ अधिक पाया जा रहा है वह तो है सर्वार्थसिद्धि या तीर्थंकरपना। महान् ऋद्धि वाले जीव। यहाँ उत्कृष्ट पुण्य नजर आता है और उत्कृष्ट पाप जहां नजर आये वह बताया है ७ नरक सो उत्कृष्ट पाप बंध हो सके, और उत्कृष्ट पुण्य बंध हो सके ऐसी योग्यता कर्मभूमिज पुरुषों में ही हैं, भोगभूमियों में नहीं है। भोगभूमि के जीव मरकर दूसरे स्वर्ग तक उत्पन्न हो पाते हैं, इससे ऊँचे नहीं, और कर्मभूमि के मनुष्य सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न हो जायें और ये ही तीर्थंकर व बड़ी ऋद्धि वाले बन जायें और ये ही कर्मभूमिज ७वें नरक तक पहुँच जायें, ऐसा एक विशिष्ट कर्मपना है, इस कारण से इस क्षेत्र को ही कर्मभूमि कहा गया है। इसके अलावा कर्म की निर्जरा करना और सर्व कर्मों से छूटकर मुक्त हो जाना यह भी इन कर्मभूमियों से ही सम्भव है भोग भूमियों से नहीं, इस कारण इनको कर्मभूमि कहा गया है। एक बात और भी है कि असी, मसी, कृषी, शिल्प, सेवा और व्यापार ये ६ प्रकार के कर्म उन्हीं क्षेत्रों में देखे जाते हैं जहाँ भरत, ऐरावत और देव कुरु, उत्तर कुरु छोड़कर शेष विदेह। तो इस कारण से भी इन इन क्षेत्रों को कर्मभूमि कहते हैं। इस सूत्र में जो अन्यत्र शब्द दिया है वह छोड़ने के लिए दिया गया है। मायने देव कुरु और उत्तर कुरु ये कर्मभूमियाँ नहीं। पहले इनको छोड़कर शेष विदेह कर्मभूमिया हैं। इस प्रकार कर्मभूमिया बताकर अब कर्मभूमि हों अथवा भोग भूमि हो, सभी मनुष्यों की स्थिति कितनी होती है यह बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

लौकिक माप के प्रकार—मनुष्यों की स्थिति जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन पल्य प्रमाण है। तीन पल्य प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति भोगभूमिया मनुष्यों में है। त्रिपल्योपम का अर्थ है ३ पल्य जैसी स्थिति की उपमा है उसे कहते हैं त्रिपल्योपम। पल्ल कितना कितना होता है यह बात आगे कही जाएगी। उस पल्ल को समझने-समझाने से पहले प्रमाण की विधि बतलाते हैं। याने किन्हीं चीजों में नाप-तौल करने की क्या विधियां हैं यह बात बतलाते हैं। सबसे पहले यह समझना चाहिये कि प्रमाण दो प्रकार का होता है याने जिससे वस्तु का नाप किया जाए वह नाप की जाने वाली बात दो तरह से होती है—(१) लौकिक नाप, (२) अलौकिक नाप। लौकिक नाप ६ प्रकार का है—(१) मान, (२) उन्मान, (३) अवमान, (४) गणना, (५) प्रतिमान और (६) तत्प्रमाण, मान—जैसे तोला, छटाँक, सेर, मन आदिक माप बनाना यह माप कहलाता है। उन्मान—किसी बरतन में चीज भरकर माप बताना जैसे धान मापने के या घी तेल मापने के जो बरतन होते हैं वे उन्मान कहलाते हैं। अवमान-गज, फुट आदिक याने लकड़ी, लोहा आदिक से वस्तु का माप किया जाये कि यह इतने गज है आदिक वह अवमान कहलाता है। गणना—संख्या को गणना कहते हैं, जैसे १० केले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

५० केले, ८ दर्जन केले, १० दर्जन केले आदिक ऐसी संख्याओं को गणना कहते हैं। प्रतिमान—पहले मान की अपेक्षा रखकर माप बताना प्रतिमान है—जैसे यह मल्ल उस मल्ल के बराबर है। तत्प्रमाण-यह अनेक प्रकार का होता है। जैसे कहना कि इस मणि का उतना मूल्य है जितनी दूर तक इसकी कान्ति पहुँचे उतने प्रमाण स्वर्ण कूट या इस घोड़े का उतना मूल्य है जितनी कि इसकी ऊँचाई है है उतने स्वर्णकूट आदिक। इस रत्न का उतना मूल्य है, जितने से इस रत्न वाला मालिक सन्तुष्ट हो जाये। किसी भी प्रकार कहना यह तत्प्रमाण है। यहाँ प्रकरण यह चलेगा कि पल्य का प्रमाण कितना है जिससे कि यह जान जायें कि मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य प्रमाण होती हैं इस प्रसंग में सर्व प्रमाणों की चर्चा की जा रही हैं ताकि समस्त मापों का भी स्पष्टीकरण हो और उसके बाद पल्य का भी स्पष्टीकरण हो जावे। यह लौकिक मापो की बात कही गई है। लौकिक मानों के उदाहरण में समझिये—छोटी पतली घास होती है उस घास के हल्के छोटे फल होते हैं—उन्हें कहते हैं घास-फल। तो चार घासफलों का एक सरसों माना गया है वजन में। यहां इन सरसों के दानों से मतलब नहीं, किन्तु उसका नाम रखा गया है और १६ सरसों का एक मासा होता है। दो मासा की एक गुंची होती है, आदिक बढ़ते-बढ़ते तोला, सेर आदिक बन जाया करते हैं। यह है नागरिकों का माना गया प्रमाण। ऐसे ही उन्मान में प्रस्त आढ़क आदिक हैं।

अलौकिक माप के प्रकार – अलौकिक मान चार प्रकार का होता है—(१) द्रव्य प्रमाण, (२) क्षेत्र-प्रमाण, (३) काल प्रमाण और (४) भाव प्रमाण। द्रव्य प्रमाण में इस तरह माप समझिये कि सबसे छोटा है एक प्रमाण। उससे बड़ा है दो प्रमाण का स्कन्ध। तीन प्रमाण का स्कन्ध। और बढ़ते जाइये तो सारा जो लोक है यह जो पूर्ण स्कंध है, समस्त लोक यह महास्कंध कहलाता है, ये सब द्रव्य प्रमाण कहलाते हैं। जैसे यहां बोलते हैं कि यह पुस्तक इस पुस्तक से बड़ी है तो यह द्रव्य प्रमाण ही तो हुआ। क्षेत्र प्रमाण में सबसे छोटा है एक प्रदेश, उससे बड़ा दो प्रदेश, तीन प्रदेश, ऐसे ही बढ़ते-बढ़ते सारा लोक यह क्षेत्र उत्कृष्ट कहलाया काल प्रमाण में। जघन्य तो है एक समय और मध्यम में २-३ ऐसे बढ़ते जायें तो उत्कृष्ट काल कितना कहलाया? अनन्त काल। भाव प्रमाण उपयोग से होता है, ज्ञान से होता है। तो ज्ञान के प्रमाण बताते कि सबसे जघन्य ज्ञान तो सूक्ष्म निगोदिया जीव की है और सबसे उत्कृष्ट ज्ञान केवली भगवान के हैं सो सब संसारियों के मध्यम प्रमाण का ज्ञान है। याने सूक्ष्म निगोदिया से बढ़-बढ़कर केवली भगवान से घटे हुये वे सब मध्यम प्रमाण के ज्ञान है। तो इस प्रकार अलौकिक प्रमाण चार बातों में निरखा जाता है।

द्रव्यप्रमाण के प्रकार और संख्याप्रमाण के भेद—उनमें से द्रव्य प्रमाण की चर्चा की जा रही द्रव्य प्रमाण में उस पल्य का प्रमाण भी आयेगा। द्रव्य प्रमाण दो प्रकार का होता है—(१) संख्या प्रमाण और (२) उपमा प्रमाण। संख्या प्रमाण तो वहां तक चलता जहां तक बुद्धि में संख्या का अन्दाज किया जा सकता हैं। यद्यपि संख्या प्रमाण भी खरबों शंख का है, अरबों से भी अनेक शंख गुणित संख्या चली गई है लेकिन बुद्धि में कुछ थोड़ा बहुत उसका अन्दाज हो जाता है इसलिये उसे संख्यात कहते हैं। अथवा असंख्यात से एक कम भी संख्या आती है तो संख्यात। बुद्धि में न आया तो भी असंख्यात का प्रमाण बताने के लिये उस असंख्यात से एक कम तक की बात संख्यात में आती है और उपमा प्रमाण वह कहलाता है कि जिसकी जानकारी का और कोई उपाय नहीं। केवल उपमा देकर बताते। जैसे अभी आगे आयेगा कि हजारों कोश के गड्ढे में रोम भरे जायें, सौ-सौ वर्ष में १-१

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रोम निकाला जाये आदिक विधि से, तो असंख्यात प्रमाण ३ प्रकार से होता है—(१) संख्यात (२) असंख्यात और (३) अनन्त। संख्यात तो ३ तरह का होता हैं। (१) जघन्य संख्यात, (२) मध्यम संख्यात और उत्कृष्ट संख्यात। मध्यम संख्यात का नाम है अजघन्योत्कृष्ट, याने जो जघन्य नहीं और उत्कृष्ट नहीं, वे सब स्थान आ गये। इसको मध्यम शब्द से क्यों नहीं कहा गया ? तो मध्यम का अर्थ है बीच और वह बीच इतना है कि जघन्य से ऊपर और उत्कृष्ट से नीचे अनेक स्थानों में हैं उतने स्थानों से मध्यम शब्द से स्पष्ट जानना नहीं बन पाता इसलिये मध्यम न कहकर अजघन्योत्कृष्ट कहा है।

गणना के प्रकारों में संख्येय प्रमाण का वर्णन—गणना के प्रकारों का वर्णन चल रहा है। द्रव्य प्रमाण की गणना दो प्रकार से बताई गई हैं—(१) संख्या प्रमाणऔर (२) उपमा प्रमाण। जिससे संख्येय प्रमाण और असंख्येय प्रमाण एवं अनन्त ऐसा ३ प्रकार का संख्या प्रमाण है। यद्यपि असंख्येय में संख्या का उल्लंघन है और एक अनन्त में तो अन्त भी नहीं है तो भी चूँकि १-१ ऐसा व्यक्ति रूप से चित्त में अवधारण कर सोचा जा रहा है, इस कारण ये सब संख्या प्रमाण में आते हैं संख्येय प्रमाण ३ प्रकारके हैं—(१) जघन्य (२) अजघन्योत्कृष्ट और (३) उत्कृष्ट । जघन्य संख्या तो दो हैं—एक को संख्या नहीं माना और इससे ऊपर जब तक कि जघन्य असंख्यात में एक कम न हो जाय तब तक संख्येय चलता है। तो उत्कृष्ट संख्येय तो जघन्य युक्ता संख्यात से एक कम है और इससे कम कम होकर दो संख्या से ऊपर तक सब अजघन्योत्कृष्ट है। अब उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण जानने के लिये एक युक्ति से बताया जा रहा है। एक जम्बूद्वीप के समान लम्बे चौड़े और हजार योजन के गहरे ऐसे चार गड्ढे बिचारे जायें। जिसमें एक गड्ढा तो अनवस्थित है और शेष ३ गड्ढे अवस्थित हैं। उन तीन के नाम हैं—(१) शलाका (२) प्रतिशलाका (३) महाशलाका। ऐसा यहां ४ कुसूलविचारे गए हैं। अबजो अनवस्थित कुसूलहै उसको सरसों से भरदिया जाय। अब मानो कोई देव १-१सरसों उठाकरएकद्वीप मेंफिर एकसमुद्र में ऐसे दाना डालता जाये, जितने द्वीप समुद्र तकन पहुँचे कि उस अनवस्थित कुसूल के सारे सरसों समाप्त हो जायें तो जितने द्वीप समुद्र तकपहुँचा अब उतना बड़ा अनवस्थित कुसूल बनायें और एक सरसों शलाका नाम के कुसूल में डालें फिर इतने बड़े अनवस्थित कुसूल को सरसों से भरा जाये और उसमें से सरसों उठा उठा कर आगे के द्वीप समुद्र में डाले। जब यह रीत जाये तो एक दाना सलाका में और डाल दिया और इतना बड़ा अनवस्थित कुसूल सोचे, इस प्रकार से करता जाये। जब शलाका कुण्ड भर जाय तो एक दाना प्रतिशलाका में डालें और शलाका को रीता समझ ले फिर इसी प्रक्रिया से शलाका कुण्ड जब भर जाय तो दूसरा दाना प्रतिशलाका में डाले, ऐसा होते होते जब प्रतिशलाका भी भर जाय तो एक दाना महाशलाका में डाले इस तरह अनवस्थित गड्ढा को उसी प्रकिया से शुरू कर करके शलाकादि पूरा भर भरके जब महाशलाका भी पूर्ण भर जाय तब समझिये कि उत्कृष्ट संख्यात का उल्लंघन करके जघन्य परीता संख्यात हुआ। अब इसमें से एक रूप निकाल लें या दाना निकाल लें तो उतने का नाम उत्कृष्ट संख्यात है। अब यहाँ एक ध्यान में देने की बात है कि उत्कृष्ट संख्यात का कितना बड़ा प्रमाण है ? जो कोई भी वस्तु संख्यात शब्द को बताये तो प्राय: अजघन्योत्कृष्ट संख्यात ही ग्रहण करना। यहां तक संख्यात की गणना का वर्णन हुआ।

असंख्यातासंख्यात परिणामों का वर्णन—अब असंख्यात की गणना बतलाते हैं। असंख्यात शब्द का अर्थ तो संख्यात को पार कर गई गणना है यानें उतने रूप कोई पदार्थ जो संख्या की उत्कृष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से भी आगे बढ़ गया हो जिसको कि यथार्थ विधि से अभी बताया ही गया है। ये असंख्यात ३ प्रकार के होते हैं (१) परीतासंख्यात (२) युक्तासंख्यात (३) असंख्यातासंख्यात। और ये तीनों तीन प्रकार के हैं—जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम (अजघन्योत्कृष्ट)। इस तरह असंख्यात ६ प्रकार के हैं। अब इसमें जघन्य परीता संख्यात का प्रमाण ऊपर बता ही दिया गया है। उसमें जितने रूप आये हैं दाने बने हैं, उन रूपों को १-१ करके बिखेर कर एक लाइन से मानों रख दिया जाय और प्रत्येक रूप पर जघन्य परीता संख्यात रख दिया जाय और उनका क्रमसे परस्पर वर्ग किया जाय, आगे आगे गुणित होते जायें तो जितना लब्ध है वह उत्कृष्ट परीता संख्यात का उल्लंघन करके जघन्ययुक्तासंख्यात हो जाता है। उतने में से एक रूप हटा लेने पर उत्कृष्टपरीतासंख्यात होता है। अब इस प्रसंग में यह जानना कि जहाँ युक्तासंख्यात का वर्णन होता वहां मध्यम युक्त असंख्यात ग्रहण करना चाहिये। अब जघन्य युक्त्यासंख्यात का प्रमाण तो निकल आया। आगे का प्रमाण जानने के लिये चलें—जघन्ययुक्ता संख्यात का जितना रूप है उनको एक-एक करके फिर पंक्तिबद्ध विरलन करें याने एक-एक रूप बिखेरें और प्रत्येक पर युक्तासंख्यात रख देवे और उनको क्रम से एक को दूसरे से लब्ध को तीसरे से आदिक विधि से गुणा करते चले जायें याने गुणित से गुणा करते चले जायें तो उत्कृष्ट युक्तासंख्यात का उल्लंघन करके असंख्यातासंख्यात हो जाता है। उसमें से एक रूप निकाल लेने पर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। इस बीच में सब मध्यमयुक्तासंख्यात है। अब असंख्यातासंख्यात का प्रमाण जानने के निए पूर्ववत विधि करें। जघन्य असंख्यातासंख्यात को बखेर करके पूर्व विधि से तीन बार वर्गित सम्वर्गित करें। इतने में यह उत्कृष्ट असंख्यात को प्राप्त नहीं होता तो वहां धर्म-द्रव्य के प्रदेश, अधर्म द्रव्य के प्रदेश, जीव के प्रदेश, लोकाकाश के प्रदेश प्रत्येक शरीर, जीव, बादर निगोद शरीर, इन असंख्यातों को उसमें जोड़ देवे तथा स्थिति बंधस्थान, अनुभाग बंधस्थान और योग स्थान और असंख्यात लोक प्रदेश बराबर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के समय ये उसराशि में मिला दे, फिर उनका जो योग हो, फिर ३ बार वर्गित, सम्वर्गित करें तो उत्कृष्ट संख्यातासंख्यात का उल्लंघन करके जघन्यपरीतानन्त होता है। अब इसमें से एक रूप हटाने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात है। इस प्रकार असंख्यातासंख्यात का वर्णन समाप्त हुआ।

अनन्त गणना के परिमाण का दिग्दर्शन—अब अनन्त का वर्णन करते हैं। जो जघन्य परीतानन्त प्रमाण है उसको विरलन विधि से उन सब जघन्य परीतानन्तो को परस्पर पूर्व की तरह वर्गित करके, योग करें तो उत्कृष्ट परीतानन्त का उल्लंघन कर जगन्य युक्तानन्त हो जाता है। उसमें से एक रूप निकालने पर उत्कृष्ट परीतानन्त होता है। अब जघन्ययुक्तानन्त का विरलन करके एक-एक रूप पर जघन्य युक्तानन्त रखकर उनको परस्पर लब्धों से वर्गित कर देवें तो उत्कृष्ट युक्तानन्त का उल्लंघन करके जघन्य अनन्तानन्त होता है। इसमें से एक रूप हटाने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है। अब उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण जानने के लिये वही विधि करें। जघन्य अनन्तानन्त का बिरलन करके पहलेकी तरह ३ बार वर्गित संवर्गित गुणित और गुणित से गुणित करके। जब तक यह उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त नहीं होता तो वहाँ सिद्ध जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकाय, भूत भविष्य काल के समय सर्व पुद्गल, सारे आकाश के प्रदेश धर्मास्तिकाय और अस्तिकाय से अनन्त अगुरुलघुगुण इनको मिला दें और फिर जो सबका योग है उसका ३ बार गुणित और गुणित से गुणा करें। अभी भी उत्कृष्ट अनन्तानन्त नहीं प्राप्त हुआ वहां अनन्तएक ज्ञान में और दर्शन में प्रक्षिप्त कर दें तो उत्कृष्ट अनन्ता-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न्तन होता है, इनमें से एक रूप कम कर दें तो अजघन्योत्कृष्टअनन्तानन्त होता है। यहां यह जानना कि जहाँ-जहाँ अनन्तानन्त खोजना हो तो वहाँ अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त ग्रहण करना चाहिये और अभव्यराशि का प्रमाण खोजना हो तो जघन्य युक्त्यानन्त ग्रहण करना चाहिये।

उपमा प्रमाण के वर्णन का प्रारम्भ—अब उपमा प्रमाण का वर्णन करते हैं। जिस प्रमाण को उपमा देकर ज्ञान कराया जाय उसे उपमा प्रमाण कहते हैं। यद्यपि संख्या प्रमाण में उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यातासंख्यात, अनन्त ऐसे प्रमाण हैं जो उपमा प्रमाण से भी अधिक हो सकते हैं फिर उनकी पद्धति गणना पद्धति है, और यहाँ यह पद्धति उपमा पद्धति है। उपमा प्रमाण ८ प्रकार के होते हैं—पल्य, सागर, सूची, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणि, लोकप्रतर और लोक।

प्रारम्भिक अवमान परिमाण—उपमा प्रमाण जानने के लिये थोड़ा अवमान जानना चाहिये ताकि उस अवमान पद्धति से योजन का प्रमाण समझ में आये और योजन के प्रमाण का आधार लेकर पल्य आदिक बड़ी उपमा प्रमाण की बात कही जाय। सबसे पहले तो परमाणु का प्रमाण समझना चाहिये। परमाणु एक प्रदेशी है, उसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है। तो वह स्वयं एक-प्रदेशी है, कम से कम दो प्रदेशी हो तो आदि अन्त कहा जा सकता है। ३ प्रदेश घेरते हों तो आदि मध्य अन्त कहा जा सकता है परमाणु में एक प्रदेशी होने के कारण उसी की आदि कहो, उसी को ही मध्य और उसी को ही अन्त कहिये, ऐसा अविभागी अतीन्द्रिय परमाणु केवल एक प्रदेशी मात्र है। परमाणु पुद्गल द्रव्य है। परमाणुओं में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हुआ करते हैं एक परमाणु में कोई एक रस, कोई एक गन्ध, कोई एक वर्ण और दो स्पर्श हो सकते हैं—स्निग्ध रूक्ष में से एक और शीत उष्ण में से एक। अब अनन्तानात परमाणुओं के संघात से एक स्कंध बना। उस परमाणु समूह से उत्संज्ञासंज्ञ बनता है। यह उत्संज्ञासंज्ञ बहुत सूक्ष्म है और स्कन्धमय हैं। ८ उत्संज्ञासंज्ञ मिलकर १ संज्ञासंज्ञ होता है। दो संज्ञासंज्ञ मिलकर एक त्रुटिरेणु होता है। ८ त्रुटिरेणु मिलकर १ त्रसरेणु होता है, ८त्रसरेणुओं का १ रथरेणु, ८ रथरेणु मिलकर १ देवकुरु उत्तर कुरु के मनुष्य के केश की मोटाई होती है। और वे ८ मिलकर मध्यम भोगभूमि के मनुष्य के केश की मोटाई होती है। और उन आठों की मोटाई बराबर जघन्य भोगभूमि के मनुष्य के केश की मोटाई होती है और वे आठों मिलकर भरत ऐरावत विदेह के मनुष्यों के केश की मोटाई होती है। ये ८ मिलकर १ लीख प्रमाण होती है ८ लीखों का एक यूक हता है। ८ यूकों का १ यवमध्य होता है याने जौ अन्न के बीज की मोटाई। ८ यवमध्यों का १ उत्सेधांगुल होता है। यह सब १ प्रदेश मात्र रेखा को लिये हुए इतनी लम्बाई का प्रमाण चल रहा है।

उत्सेधाङ्गुल, प्रमाणाङ्गुल व आत्माङ्गुल तथा बड़े माप—उत्सेधांगुल से नारकी, तिर्यञ्च, देव, मनुष्य और अकृत्रिम जिनालय की प्रतिमा इनके कायका उत्सेध मापा जाना चाहिये। वही उत्सेधांगुल ५०० मिलकर एक प्रमाणांगुल होता है। वही प्रमाणांगुल अवसर्पिणी काल में प्रथम चक्रवर्ती का प्रथम आत्मांगुल होता है अर्थात् यह चक्रवर्ती के अंगुल का प्रमाण है। उस समय उस प्रमाण से ग्राम, नगर आदिक के प्रमाण का परिज्ञान होता था। अन्य समयों में मनुष्यों का जब-जब जो-जो आत्मांगुल होता है याने उससे छोटे शरीर वाला होता है और उन शरीरों का जो अंगुल होता है वह छोटा-छोटा होता जाता है। उस आत्मांगुल से उस समय के ग्राम, नगर आदिक का प्रमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाना जाता है। उस आत्मांगुल का कोई एक प्रमाण नहीं है। जिस समय जो मनुष्य होते, जितने शरीर की ऊंचाई वाले, उनके जो-जो अंगुल हैं वे उन-उनके आत्मांगुल हैं। प्रमाणांगुल और उत्सेधांगुल इन दो का प्रमाण जो अभी बताया गया है वही रहता है। प्रमाणांगुल से द्वीप, समुद्र, वेदिका, पर्वत, विमान, नरक, प्रस्तर आदिक अकृत्रिम पदार्थों का आयाम विष्कम्भ आदिक जाने जाते हैं। अब आगे का प्रमाण जानने के लिये अंगुल का आधार लिया जाता है। ६ अंगुल का पाद होता है, १२ अंगुल का एक बेथा (बिलाथ) होता है, २ बिलाथों का एक हाथ होता है। २ हाथों का किष्कु, २ किष्कुओं का एक दंड, २ दंडों को धनुष प्रमाण कहते हैं। २ हजार दंड का एक कोश होता है और ४ कोश का एक योजन होता है। इस प्रकार आधारभूत कुछ मापों को बताकर अब पल्य का विवरण करते हैं।

पल्यों का परिमाण—पल्य ३ प्रकार के होते हैं—(१) व्यवहार पल्य, (२) उद्धार पल्य और (३) अद्धापल्य। व्यवहार पल्य का शब्दार्थ तो है—आगे के पल्यों का व्यवहार कर सके उसका यह बीजभूत है, क्योंकि व्यवहार पल्य के विवरण बिना उद्धार पल्य अथवा अद्धा पल्य का प्रमाण नहीं जाना जा सकता। उद्धार पल्य का अर्थ है उद्धरण किये गये रोम के अंशों द्वारा द्वीप समुद्र की संख्या का निर्णय करना, अद्धापल्य का अर्थ है अद्धा मापने काल (समय), जिस पल्य से कर्म आदि की स्थिति का परिज्ञान हो उसे अद्धापल्य कहते हैं। इन पल्यों का प्रमाण जानने के लिये एक उपमा कीजिए कि प्रमाणांगुल के हिसाब से एक योजन लम्बे-चौड़े गहरे तीन पल्य अर्थात् कुसूलों की कल्पना कीजिए। एक दिन से लेकर १० दिन तक के मेढ़े के बच्चे के जितने पतले बाल हों वे पतले बाल इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में हों कि जिनका दूसरा टुकड़ा किया ही न जा सके उतने रोम खण्डों से परिपूर्ण भर दिया जाए प्रथम का कुसूल याने व्यवहार पल्य। अब उसमें से १००-१०० वर्ष व्यतीत होने पर एक-एक रोम खण्ड निकाला जाए। जितने समयों में वह व्यवहार पल्य रिक्त हो सके उतने काल का नाम व्यवहार पल्य है। इतने बड़े लम्बे समय का वर्णन स्पष्ट गणना में नहीं आ सकता, अतएव उपमा द्वारा ही सब वर्णन किया जा रहा है। ऐसा कोई गड्ढा खोदता हो और वहाँ रोम भरे जाते हों और उनमें से कोई १००-१०० वर्ष में एक-एक रोम उठाये, यह किये जाने की बात नहीं है। यह चर्चा यहां नहीं है, किन्तु मानो ऐसा किया जाये तो कितना समय लग सकता है? इस उपमा से उसका प्रमाण बताया जा रहा है। अब उन्हीं रोम खण्डों के प्रत्येक के इतने खण्ड और किए जायें जो असंख्यात करोड़ वर्ष के जितने समय हैं उतने हिस्से बन जायें, उससे भर दिये जायें उद्धारपल्य में याने दूसरे गड्ढे में, अब एक-एक समय में एक-एक रोम छेदों से निकाला जाये, जितने समय में वे रिक्त हो सकें उतने समय को उद्धार पल्योपम कहते हैं। इन १० कोड़ा-कोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धार सागर होता है। ढाई सागर प्रमाण जितने रोम छेद हैं उतने द्वीप समुद्र हैं। अब अद्धापल्य का प्रमाण जानने के लिये उपमा दी जाये कि उद्धार पल्य में जितने रोमांश हैं उसके उतने और टुकड़े हों जितने कि १०० वर्ष के समय होते हैं, उन रोम छेदों से भरा हुआ अद्धापल्य है। अब एक-एक समय में एक-एक रोम छेद निकाला जाये। जितने काल में वह रिक्त हो सके उतने काल का नाम है अद्धापल्योपम। इन १० कोड़ा-कोड़ी अद्धापल्यों का एक अद्धासागर होता है। १० कोड़ा-कोड़ी अद्धा सागरों का प्रमाण एक अवसर्पिणी काल होता है और उतने ही प्रमाण एक उत्सर्पिणी काल होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस अद्धापल्य से नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इनको भव स्थिति, आयु स्थिति, कायस्थिति और कर्मों की स्थिति जानना चाहिये।

सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, प्रतरलोक व घनलोक का परिमाण—अद्धापल्य के जितने अर्द्धच्छेद हों उनको बिरलन देय सलाका विधि से प्रत्येक बिरलन स्थान पर अद्धापल्य रखे जायें और उनको परस्पर गुणित किया जाये, जितने वे छेद हों उतने आकाश प्रदेशों से एक रेखा बनी हो उसे सूच्यंगुल कहते हैं याने सूच्यंगुल के उतने प्रदेश होते हैं। सूच्यंगुल की लम्बाई लौकिक हिसाब से कोई अधिक बड़ी नहीं है, लेकिन उतने प्रमाण क्षेत्र में आकाश प्रदेश उतने असंख्यात रहते हैं। वही सूच्यंगुल अन्य सूच्यंगुल से गुणित हो जाये उसे प्रतरांगुल कहते हैं याने एक सूच्यंगुल लम्बा और एक सूच्यंगुल चौड़ा इसे प्रतरांगुल कहते हैं और वही प्रतरांगुल एक सूच्यंगुल से गुणित हो जाये सो घनांगुल है। वे याने एक सूच्यगुल लम्बा, उतना ही चौड़ा और उतना ही मोटा एक घनांगुल कहलाता है असंख्यात वर्षों के जितने समय होते हैं उतने खण्ड अद्धापल्य के किए जायें और असंख्यात खण्डों को निकाल कर असंख्यात एक भाग बुद्धि से बिरलन करके एक-एक भाग में घनांगुल रखकर उन्हें परस्पर गुणित किया जाए तो जगच्छ्रेणि होती है। जगत् श्रेणी को जगत् श्रेणी से गुणा किया जाये तो प्रतरलोक होता हैं, वही प्रतरलोक अन्य जगत्श्रेणी से गुणित किया जाये तो घनलोक होता है। इस प्रकार उपमा प्रमाण के वर्णन के साथ द्रव्य प्रमाण का वर्णन समाप्त होता है।

क्षेत्र प्रमाण—क्षेत्र प्रमाण में दो विभाग हैं—(१) अवगाह क्षेत्र और (२) विभाग निष्पन्न क्षेत्र। अवगाह क्षेत्र में तो १, २, ३, ४, संख्यात, असंख्यात अनन्त प्रदेशी पुद्गल द्रव्य का जिसमें अवगाह है ऐसे आकाश प्रदेश जाने जाते हैं। विभाग निष्पन्न क्षेत्र नाना तरह का होता है जैसे असंख्यात आकाश श्रेणियाँ। क्षेत्र प्रमाण में घनांगुल का एक असंख्यात भाग क्षेत्र, प्रमाणांगुल का असंख्यात भाग क्षेत्र ये सब क्षेत्र प्रमाणांगुल होते हैं। पाद विलात आदिक पहले कहे ही गये हैं।

काल प्रमाण—काल प्रमाण में सबसे छोटा एक समय रहता है। मायने सबसे जघन्य गति से चल रहा जो प्रमाण है वह द्वितीय प्रमाण तक पहुँचे, व्यतिक्रम करे उतना काल अविभागी एक एक समय है। असंख्यात समयों की एक आवली होती है, असंख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास होता है उतना ही निश्वास होता है और दोनों मिलकर एक प्राण होता है। ७ प्राणों का एक स्तोक होता है, ७ स्तोकों का लव होता है। ७७ लवों का एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्तों का दिन-रात होता है १५ दिन-रात का एक पक्ष होता है। दो पक्ष (पखवारा) का एक महीना होता है। २ महीने की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है, दो अयनों का एक वर्ष होता है, ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है। ८४ लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है। इस प्रकार इसी ८४ लाख प्रमाण से बढ़-बढ़कर पूर्वांग पूर्व, नयुतांग. नयुत, कुमुदांग कुमुद, पद्मांग, पद्म, नलिनांग नलिन, कमलांग, कमल, त्रुट्यांग, त्रुटय, अटटांग अट्ट, अममांग अमम, हुहू अंग, हूहू लतांग लता, महालता आदिक जानना। सम्पूर्ण इस गणना से संख्यात जाना जाता है और अवधिज्ञान से असंख्यात पल्य, सागर जाना जाता है, और उससे परे अनन्त है जो सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष है।

भाव प्रमाण—पल्य का प्रमाण बताने के प्रकरण में भली-भाँति सब मापों का परिचय हुआ, ऐसा ख्याल करके लौकिक, अलौकिक समस्त मापों का वर्णन बताया। अब अन्त में पूर्व, संकल्प के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुसार भाव प्रमाण बतला रहे हैं। भाव का अर्थ यहाँ उपयोग है, ज्ञान है, सो भाव प्रमाण ५ प्रकार के हैं—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनः पर्यय ज्ञान और, (५) केवल ज्ञान। इस प्रकरण में यह तारतम्य विदित होता है कि मतिज्ञान में इतना विकास है, श्रुतज्ञान में इतना विकास है, इस तरह सभी ज्ञानों में विकास और विकास की जातियाँ सबका परिचय होता जाता है। इसमें सर्वोत्कृष्ट भाव प्रमाण है केवल ज्ञान। और सबसे जघन्य भाव प्रमाण है, सूक्ष्म निगोद लब्ध्य पर्याप्तक का ज्ञान और वह भी जबकि वह तीन मोड़े लेकर विग्रह गति से जा रहा हो तो उसके एक मोड़े के समय इससे ऊपर और केवल ज्ञान से नीचे अजघन्योत्कृष्ट अनेक प्रकार के भाव प्रमाण पाये जाते हैं। भावों को प्रमाण बताना भाव के अंशों से ही हो सकता है। और, वे मतिज्ञानादिक ज्ञानों के स्वरूप के परिचय से भली-भाँति विदित हो सकता है। इस सूत्र में मनुष्यों की स्थिति बताई गई जघन्य और उत्कृष्ट रूप से तो यह जिज्ञासा हो जाती है कि तिर्यञ्चों की फिर कितनी स्थिति है। उसका प्रतिपादन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

तिर्यञ्चयोनिजानां च ॥३६॥

तिर्यञ्चों की भवस्थिति का विवरण—तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न हुए प्राणियों की स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन पल्य की है। जैसे भोग भूमिया के मनुष्य होते हैं उसी तरह भोग भूमि में तिर्यञ्च पशु-पक्षी हुआ करते हैं। वहां जलचर नहीं होते। मछली, मत्स्य, मगर आदिक नहीं होते। तो भोग भूमि के उन पशु पक्षियों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की है और जघन्य स्थिति तो अन्य साधारण जीवों में जैसे निगोदिया जीव की अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्च योनि का अर्थ क्या है? तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से जो जन्म होता है उसे तिर्यंग्योनि कहते हैं, और उस तिर्यंग्योनि में उत्पन्न हुवे प्राणियों को तिर्यंग्योनिज कहते हैं। उनकी उत्कृष्ट स्थिति इस सूत्र में बतायी गई है। तिर्यञ्च तीन प्रकार के होते हैं—(१) एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। विकलेन्द्रिय में दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव हैं, तब इन्द्रिय की अपेक्षा से समझना चाहिए कि इसमें पाँचोइन्द्रिय वाले जीव रहते हैं। उनमें से एकेन्द्रिय जीव ५ प्रकार के हैं—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) अग्निकायिक, (४) वायुकायिक और (५) वनस्पतिकायिक। पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) शुद्ध पृथ्वीकायिक और, (२) खर-पृथ्वीकायिक। शुद्ध पृथ्वीकायिकों की उत्कृष्ट स्थिति १२ हजार वर्ष है और खर पृथ्वीकायिकों की उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष है। वनस्पतिकायिक जीवों की भवस्थिति उत्कृष्ट १० हजार वर्ष है याने ये पेड़ कोई-कोई १० हजार वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। जलकायिक जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति ७ हजार वर्ष है, वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति ३ हजार वर्ष है, अग्निकायिक जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति तीन रात दिन है, याने कोई अग्निकायिक जीव खूब ईंधन का संयोग मिलने पर भी तीन दिन-रात से अधिक जीवित नहीं रहती। भले ही वहाँ अग्निकायिक बहुत हैं और नये-नये पैदा होते रहते हैं। दो इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष की है। तीन इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति ४६ रात-दिन है। जैसे बिच्छू, पटार, कानखजूरा, कीड़ी, जू आदिक ये तीन इन्द्रिय कहलाते हैं। उनमें किसी की अधिक से अधिक आयु हो तो ४६ दिन की ही हो सकती है। चार इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट भवस्थिति ६ महीना है। इस तरह विकलेन्द्रिय का वर्णन हुआ। अब पञ्चेन्द्रिय के भवों की स्थिति बतला रहे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच ५ प्रकार के होते हैं—(१) जलचर, (२) परिसर्प, (३) उरग, (४) पक्षी और, (५) चतु-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ष्पाद। जलचर जीव वे हैं जो जल में जीवन पाते हैं। जल के बिना वे अधिक देर जीवित नहीं रह सकते। जैसे मछली आदिक उनकी उत्कृष्ट भवस्थिति है एक क्रोड पूर्व की। परिसर्प कहलाते हैं गुहा नेवला आदिक, उनकी उत्कृष्ट स्थिति ६ पूर्वांग की है। ६ पूर्वांग एक पूर्व से कम होता है। ८४ लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है। उरग मायने सर्प आदिक—इनकी उत्कृष्ट स्थिति ४२ हजार वर्ष की होती है। पक्षियों की उत्कृष्ट भवस्थिति ७२ हजार वर्ष है और चतुष्पाद तिर्यंचों की उत्कृष्ट भवस्थिति तीन पल्योपम है। इस प्रकार तिर्यंच जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बतलायी। उनकी जघन्य स्थिति अन्त-र्मुहूर्त है।

मनुष्य और तिर्यंन्चों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति समान होने पर भी दो सूत्रों की रचना का प्रयोजन—अब इस प्रसंग में एक शंका यह होती है कि इससे पहले के सूत्र में बताया है मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति ३ पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और वही स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य तिर्यन्चों की बतायी जा रही है फिर अलग-अलग सूत्र न बनाकर उसी पहले सूत्र में ही तिर्यन्च शब्द और डाल देते। केवल दो मात्रायें और बढ़ती थीं। सूत्र बन जाता नृतिर्यक्स्थिती परावरे त्रिपल्योपमा-न्तर्मुहूर्ते" मनुष्यों और तिर्यन्चों की स्थिति—बस इस शब्द से सब अर्थ निकल आता। अलग से सूत्र बनाने की क्या जरूरत थी ? समाधान इसका यह है कि यदि एक ही सूत्र बना दिया जाता जैसा कि शंकाकार ने कहा—तो इसका अर्थ यह बन वैठता कि मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है और तिर्यन्चों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। चूँकि दो शब्द पड़े हैं—परावरे और दो शब्द रखे गत हैं—मनुष्य तिर्यन्च। तो उनका क्रम से अर्थ लगाकर यह सिद्धान्त विरूद्ध अर्थ हो जाता है अथवा सिद्धान्त विरूद्ध भी कुछ अधिक नहीं, लेकिन जो कहना था वह तो नहीं बता पाये। मनुष्यों की उत्कृष्ट और जघन्य दोनों ही स्थितियां और तिर्यन्चों की भी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों स्थितियाँ बताना है। अलग सूत्र देने से इस प्रकृत सूत्र में उन सब शब्दों की अनावृत्ति आ जाती कि तिर्यन्चों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है।

भव स्थिति व कायस्थिति का अन्तर विवरण—अब यहाँ एक बात और विशेष जानना कि दो तरह की स्थितियाँ हुआ करती हैं—(१) भवस्थिति और, (२) कायस्थिति। भवस्थिति का अर्थ हुआ एक भव की पायी हुई स्थिति, जिसे कहते हैं आयु, जीवन, मरण। एक जीवन पाया, मरण हो गया, यह तो कहलाता है भवस्थिति और कायस्थिति का अर्थ है कि जो काय पाया है उसका त्याग न करके अनेक भवों में बना रहना यह है कायस्थिति। जैसे कोई जीव त्रस काय में उत्पन्न हुआ, मानो मक्खी बना तो भवस्थिति तो मक्खी की मानी जायेगी और यह मरकर त्रस ही त्रस होता रहे करोड़ों भवों तक भी तो उन करोड़ों भवों तक का जो समय है वह कायस्थिति मानी जायेगी। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इसकी भवस्थिति तो उत्कृष्ट अभी बतायी ही गई है। किसी की ३ रात-दिन ही है, किसी की हजार-हजार वर्ष है, मगर कायस्थिति पृथ्वी, जीव रहा, फिर पृथ्वी बना, तो कितने ही भव गुजर गये, पृथ्वी ही पृथ्वी लगातार होता रहे तो वह कायस्थिति का समय है और ऐसी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्याते लोक प्रमाण समय की है। याने एक सारे लोक में जितने प्रदेश हैं उनकी जितनी गिनती है उतना समय लग जाये और ऐसे-ऐसे असंख्याते लोक बुद्धि में लिये जायें, उनको समय लग जाये, इतनी कायस्थिति है। बताया गया है कि एक आवली में जघन्य युक्ता-संख्यात समय होता है। अभी असंख्यात का समय प्रमाण बताया था। उत्कृष्ट संख्यात ही बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बड़ा समय है। सब हिसाब अन्दाज कर लो तो असंख्याते लोक प्रमाण कायस्थिति है, कोई जीव वनस्पतिकायिक हुआ—तो वनस्पतिकायिक की भवस्थिति अधिक से अधिक १० हजार वर्ष की है, कोई वृक्ष १० हजार वर्ष तक ठहर सकता है लेकिन वह जीव मर-मरकर वनस्पतिकायिक होता रहे ऐसे अनगिनते भवों को लेता रहे और यह तो अनन्त भव भी ले सकता। इस अनन्त से मतलब अन्त-रहित से नहीं, किन्तु अवधिज्ञान की सीमा से बाहर। तो वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्त काल है, जिसमें असंख्यात पुद्गल परिवर्तन हो जाते हैं। जो पुद्गल परिवर्तन आवली के असंख्यात भाग प्रमाण हैं। अब विकलेन्द्रिय की भवस्थिति तो बतायी गई थी। दो इन्द्रिय १२ वर्ष तक रह सकते, तीन इन्द्रिय ४६ रात-दिन रह सकते, चार इन्द्रिय ६ महीने तक रह सकते, अगर ये मर-मरकर विकलेन्द्रिय ही होते रहें तो ऐसा समय असंख्यात हजार वर्ष तक चल सकता है। पंचेन्द्रिय तिर्यन्च हों, अथवा मनुष्य हों भवस्थिति तो तीन पल्य तक ही है, मगर इनकी कायस्थिति पृथक्त्वकोटि पूर्व अधिक तीन पल्य है। याने जिस पूर्व भव से ये भोगभूमि में आ गये, उस पूर्व भव की भी आयु इसमें शामिल है, ऐसी इन सबकी भवस्थिति और कायस्थिति बतायी किन्तु कायस्थिति जघन्य इन सभी की अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि एक ही भव को ले और जघन्य स्थिति वाले भव को ले और मरकर दूसरी काया में उत्पन्न हो तो इनकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त ही रही। हाँ देव और नारकियों की काय-स्थिति वही है जो उनकी मौजूदा भवस्थिति है, याने देव मरकर देव नारकी में उत्पन्न नहीं होता, नारकी मरकर देव नारकी में उत्पन्न नहीं होता, इसलिए उनका काय दो भव भी नहीं चलता, इन कारण उनकी जो भवस्थिति है वही कायस्थिति कहलाती है।

तिर्यन्चों की स्थिति आयु प्रकरण वाले चौथे अध्याय के प्रसंग में न कहकर मनुष्य लोक के प्रकरण में कहे जाने का कारण—यहाँ एक आशंका होती है कि प्रसंग तो मनुष्यों का चल रहा था। उस प्रकरण में तिर्यन्चों की आयु बताने के लिए इस सूत्र को कहने का क्या प्रयोजन है? उत्तर इसका यह है कि यद्यपि यहाँ न बताकर जहां चौथे अध्याय में देवों की नारकियों की स्थितियाँ बतायी जाएगी वहाँ ही इसको कहा जा सकता था और वह प्रसंग प्रकरण भी यही था। आयु सबकी बतायी जा रही है, तिर्यन्चों की भी बतायी जाती तो भी चौथे अध्याय में आने वाले उस प्रकरण में तिर्यन्च योनिज की स्थिति न बताकर यहाँ बताने का मतलब एक लाघव है। यहाँ तो ६-७ शब्दों में ही सूत्र बन गया क्योंकि इससे पहले सूत्र से परावरेत्रिपल्यापमान्तर्मुहूर्ते इन शब्दों की अनुवृत्ति आ गई है लेकिन आगे चौथे अध्याय में कहने पर इसकी अनुवृत्ति नहीं आती, तो यह शब्द भी बढ़ाकर बोलना पड़ता। तो इससे सूत्र बहुत बड़ा बन जाता। तो सूत्रों को लाघव करने के लिये थोड़े से ही शब्दों से सूत्र बन जाता है अतएव यहाँ ही इस सूत्र को कहा गया है। दूसरी बात यह है कि प्रमाण विरूद्ध भी नहीं है, क्योंकि यहाँ तिर्यक्लोक का कहा जाना प्रकरण में संगत है, अतएव यह सूत्र यहाँ ही कहा गया।

ढाई द्वीप की विशेषता से वर्णन किये जाने का प्रयोजन—अब एक आशंका और होती है कि द्वीप समुद्र तो असंख्याते हैं, उन असंख्याते द्वीप समुद्रों में से एक ढाई द्वीप का ही निरूपण किया जा रहा है। अन्य द्वीपों के बारे में एक सूत्र से संकेत भर कर दिया तो इसका क्या प्रयोजन है कि इन असंख्याते द्वीप समुद्रों में ढाई द्वीप का बहुत बड़े विस्तार से वर्णन किया जा रहा है। ढाई द्वीप के अतिरिक्त और भी तो अनेक द्वीप हैं और बहुत बड़े मनोज्ञ और कुछ द्वीपों के बीच अकृत्रिम चैत्या-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लय आदिक हैं और उनका भी विशेष वर्णन नहीं बताया और अनेक द्वीप समुद्र आखिर जो रचना में ही तो हैं, क्यों उनकी अवज्ञा की गई है ? उसका समाधान—ढाई द्वीप में जो क्षेत्र विभाग आदिक का विस्तृत निरूपण है सो यह निरूपण इसलिये विस्तार से किया गया कि मनुष्यलोक संख्या विषयक जिज्ञासा होना इस मनुष्य को प्राकृतिक है। मनुष्य ही मोक्ष जाते है और मनुष्यों से ही मोक्ष मार्ग का एक चलन चलता है। तो मनुष्यलोक की जिज्ञासा शान्त करने के लिये मनुष्य-लोक का व्याख्यान करना पड़ा। ✓

मोक्ष मार्ग के प्रकरण में लोक रचना बताने की व्यर्थता की शंका व उसका समाधान—अब यहाँ आशंका होती है कि वर्णन कर्त्तव्य मनुष्यलोक का ही सही और साथ में कुछ द्वीप समुद्र का भी है मगर प्रकरण तो जीव तत्त्व को बताने का है। जैसे कि शुरू-शुरू में विधेय बताया, धेय बताया कि सम्यग्दर्शन, समयग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का एकत्व मोक्ष मार्ग है और सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थ श्रद्धान है और जीवाहिक ७ तत्त्व हैं तो तत्त्व का ही वर्णन करिये। यहाँ द्वीप समुद्र आदिक निरर्थक रचना करने से क्या मतलब है ? समाधात—बात यह है कि मनुष्यों का विशेष वर्णन करना तो आवश्यक ही है। वर्णन करने वाले भी मनुष्य हैं और जिनको सुनाना है वे भी मनुष्य हैं और मनुष्य भव में ही आत्मकल्याण की विशेष बात है। तो मनुष्यों का वर्णन तब तक स्पष्ठ समझ में नहीं आता जब तक कि यह ज्ञान न हो कि यह मनुष्य रहते कहाँ हैं ? तो मनुष्यों का आधार बताने के लिये ढाई द्वीप का वर्णन करना पड़ा और चूँकि ढाई द्वीप भी कहीं ऐसे नहीं पड़े। आकाश में लटके हों या और कुछ। वे हैं कहां ? यह भी रचना कहाँ है ? तो यह बात समझने के लिये असंख्याते द्वीप समुद्र की बात कहनी पड़ी। जो है सो ही कहा जा रहा। कोई बुद्धि से कृत्रिमता लाकर नहीं कहा जा रहा और असंख्यात द्वीप सद्रद्र भी कहाँ है ? इसको स्पष्ट करने के लिये तीन लोक का वर्णन करना पड़ा। और तीन लोक भी क्या चीज है ? कहां हैं ? वह भी स्पष्ट भाव में आये, उसके लिये अनन्त अलोकाकाश भी बताना होता है। तो मनुष्यों का आधार बताने के लिये द्वीप समुद्रादिक विशेषों का वर्णन किया गया है। यह समस्त वर्णन प्रयोजन रहित नहीं है। देखो मनुष्य संसार की गतियों से प्रधान जीव है। मनुष्यों की गणना उच्च कोटि के जीवों में है और तब ही चारों गतियों में सबसे कम संख्या में पर्याप्त मनुष्य पाये जाते हैं। मनुष्य गति में जीव सबसे थोड़े हैं। अरहंत भगवान, उत्कृष्ट श्रोता, वक्ता, वादी प्रतिवादी, विचारक, वैज्ञानिक ये सब मनुष्य ही तो हैं। ऐसे मनुष्यों का विशेष स्पष्टता से तब ज्ञात होता है जबकि आधार आदिक भी सब विज्ञात हुये।

ढाई द्वीपों में मनुष्यों के उत्पन्न होंने के कारण का एक अनुचिन्तन—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि ढाई द्वीपों में अथवा इनके अन्तर्गत समुद्रों के स्थानों में जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं उनका निमित्त कारण क्या है ? याने किन कारणों से मनुष्य इन ढाई द्वीपों से उत्पन्न होते हैं और इससे बाहर उत्पन्न नहीं होते। इस बात को समझने के लिये थोड़ा इस सिद्धान्त पर दृष्टि दीजिए। मुख्य कर्मों में चार प्रकार के कर्म कहे गये हैं।—(१) जीव विपाकी, (२) पुद्गल विपाकी, (३) भव विपाकी, (४) क्षेत्र विपाकी। जीव विपाकी, कर्म की प्रकृति है कि उसका फल जीव में हो। राग-द्वेषादिक भाव ये सब जीव में हैं, और ये जीव विपाकी कर्म के प्रतिफल हैं। पुद्गल विपाकी कर्म वे कहलाते हैं कि जिनका फल पुद्गल में प्राप्त हो याने शरीर में जिसका फल हो। जैसे संस्थान बनना, संहनन बनना आदिक बातें। और भव विपाकी कर्म की प्रकृति है कि इस जीव को एक भव में रोके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखना, उसका क्षय होने पर दूसरा भव विपाकी उदय में आता है। दूसरे भव में रोकना, इसी तरह अनेक क्षेत्र विपाकी कर्म भी इस संसारी आत्मा के साथ बंध रहे हैं, जिसके उदय से यह जीव क्षेत्र गमन करता है। याने अनेक क्षेत्रों में विपाक होवे ऐसी प्रकृति को रखने वाले चार आनुपूर्वी कर्म हैं। तो ये कर्म उन स्थलों पर उन जीयों के जन्म लेकर उत्पत्ति होने में हेतुभूत हो जाता है। सारांश यह है कि जिन जीवों के जिस प्रकार के कर्म का सद्भाव होता है उसके ही अनुसार उन द्वीप समुद्रों में जन्म हुआ करता है। तो यों जीवों के आधार का निरूपण मनुष्यों के आधार का निरूपण किया गया है। यदि इन आधारभूत साधनों का निरूपण न किया जाये तो जीव तत्त्व के बारे में कुछ निरूपण अथवा समझ न बनेगी। और जब जीव तत्त्व की समझ न बनी, श्रद्धान, ज्ञान न बना तो फिर प्रकृत वर्णन न हो सकेगा। और जब जीव तत्त्व का वर्णन न बने तो अजीव आश्रव का वर्णन हो ही नहीं सकता। इस कारण उस ही रत्नत्रय प्रकरण से सम्बन्धित है यह सब वर्णन आ जाये कि लोक रचना भी विवरण से भरा हुआ है।

द्वीप समुद्रादिक लोक रचना के कर्तृत्व के विषय में शंका व उसका समाधान—अब वहाँ कोई शंका करता है कि इस अध्याय में प्ररूपण तो बहुत आ गया कि ऐसे लोक हैं, इतने द्वीप समुद्र हैं, बहुत अच्छी-अच्छी रचना भी बतायी गई है, पर यह नहीं कहा गया है कि आखिर इन रचनाओं को किया किसने ? हम तो यह ही समझते हैं कि ये द्वीप समुद्रादिक हैं, वे किसी एक महान् बुद्धिमान के द्वारा बनाये गये हैं और वह महान् बुद्धिमान ईश्वर ही हो सकता। तो यह सारी रचना ईश्वर कृत है, क्योंकि इनका आकार पाया जा रहा है। जिन-जिनमें आकार पाया जाता है वे किसी के द्वारा बनाये गये हैं। जैसे घड़ा, किवाड़ आदि इनमें आकार है तो ये किसी के बनाये हुये ही तो हैं। कुम्हार, कोरी, जुलाहा आदिक ये सब उसके बनाने वाले हैं। तो ऐसे ही जब द्वीपादिक के आकार पाये जा रहे तो ये भी किसी बुद्धिमान के बनाये हैं। अब इनको साधारण बुद्धिमान कैसे बना सकते हैं ? ये सब ईश्वरकृत हैं।' समाधान—शंका में जो यह बताया गया कि जिन-जिनका आकार हो वे सब किसी के बनाये हुये होते हैं तो ईश्वर के शरीर का आकार तो है ही, आकार बिना कोई शरीर तो होता नहीं। तो यह ही मूल बतलाओ कि ईश्वर के शरीर को किसने बनाया ? अगर कहा जाये कि ईश्वर के शरीर को दूसरे ईश्वर ने बनाया तो उसके शरीर को किसने बनाया ? मानते जाओ। ईश्वर की अनवस्था हो जायेगी तो पहले यह ही निर्णय न हो पायेगा फिर जगत के बनाने की चर्चा हो रही ही कहां ? अगर कहा जाये कि ईश्वर के तो शरीर ही नहीं है, निर्देह ईश्वर जगत का कर्त्ता है। तो जो देहरहित मानते हैं ईश्वर को, उनके यहाँ ईश्वर जगत का निमित्त कारण है, यह सिद्ध ही नहीं हो सकता, क्योंकि वह निर्देह है। जो-जो निर्देह है वह सृष्टि का कारण नहीं बन सकता। जैसे मुक्त आत्मा। ऐसा स्वयं इन शंकाकारों ने माना है कि जो जीव कर्म से मुक्त हो जाते हैं उनके देह नहीं रहता और वे मुक्त पुरुष ज्ञानरहित हो जाते हैं। जगत की रचना करने की तो कोई बात ही नहीं है। तो जो देहरहित हो गया वह सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकता। तब फिर यह बहुत-बहुत प्रमाण देना शंकाकार की शोभा को बिगाड़ना है। आगम प्रमाण में लोग यह कहते कि ईश्वर की आंख सब तरफ है, मुख सब तरफ है, बाहु सब ओर हैं और अपनी बाहुओ द्वारा तीनों लोक की रचना करता है यह सब व्यर्थ की बात है। और जो देहरहित ईश्वर को जगतकर्त्ता कहते हैं वे भी अपना प्रमाण दिया करते हैं कि उसके पैर नहीं, हाथ नहीं, आँखें नहीं फिर भी देखता है। कर्ण नहीं फिर भी सुनता। वह सारे विश्व को जानता, पर उसको कोई नहीं जानता आदिक प्रमाण पेश करना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी व्यर्थ है, क्योंकि देह सहित ईश्वर हो वह भी जगत को रचने का कारण नहीं और जो देहरहित हो वह भी जगत का सृष्टिकर्ता नहीं हो सकता।

नित्य ज्ञानपने की बात जोड़कर ईश्वर में लोक कर्तृत्व की सिद्धि की अनुपपत्ति—शंका—जो अभी बताया गया था समाधान में कि मुक्त आत्मा देह रहित है और इस कारण वह सृष्टिकर्त्ता नहीं है तो इसी तरह ईश्वर भी देहरहित है और वह भी सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकता। इसके समाधान में एक विपत्ति है। बात यह है कि मुक्त आत्मा तो अज्ञ है, ज्ञानरहित है इस कारण संसार की उत्पत्ति में ज्ञानरहित आत्मा कारण नहीं हो सकता। किन्तु, ईश्वर तो यद्यपि देहरहित है तो भी नित्य ज्ञान वाला है। इस कारण भी जगत की सृष्टि का निमित्त कारण हो जायेगा। समाधान—शंकाकार ने जो हेतु दिया है कि नित्य ज्ञान रूप होने से ईश्वर जगत का सृष्टिकर्त्ता है इस अनुमान में जो हेतु दिया है वह हेतु युक्त नहीं बैठता, कारण यह है कि व्यतिरेक तो इसका है नहीं। जब यह कहा गया कि नित्य ज्ञान वाला ईश्वर जगत को रचता है तो उसके खिलाफ में दूसरी बात तो बतायी नहीं जा सकती व्यतिरेक सिद्ध ही नहीं है। जैसे अनुमान करते हैं कि इस पर्वत में अग्नि है धुआँ होने से, तो वहाँ जब यह व्यतिरेक सिद्ध है कि जहां अग्नि नहीं होती वहां धुआँ नहीं होता तब ही तो धुआँ देखकर अग्नि का ज्ञान करना सत्य है। तो ऐसे ही जब ऐसा व्यतिरेक मिले, जहाँ नित्य ज्ञानी ईश्वर नहीं है वहाँ सृष्टि भी नहीं होती। तब तो इस हेतु से सृष्टि सिद्ध हो। सो व्यतिरेक है नहीं, और जहाँ व्यतिरेक नहीं है वहाँ अन्वय का महत्त्व ही क्या है ? तो यों नित्य ज्ञान वाला ईश्वर यह हेतु सृष्टि कर्तृत्व को सिद्ध नहीं करता।

प्रकरण यह चल रहा है कि तृतीय अध्याय में जो अनेक द्वीप समुद्रों की रचना बतायी गई है यह सब रचना तो होगी, परन्तु है यह सब ईश्वर के द्वारा की गई ? इसके समर्थन में शंकाकार ने यह अनुमान किया था कि ये द्वीपादिक समस्त किसी बड़े बुद्धिमान के द्वारा बनाये गये हैं, क्योंकि आकार विशेष वाले होने से। इसके समाधान में अनेक वार्ता रखकर अन्त में यह सिद्ध किया था कि ईश्वरकृत यह जगत रचना नहीं है, क्योंकि वह देहरहित है और जो देहरहित है वह ज्ञानरहित हैं, क्योंकि मोक्ष मायने क्या हैं ? समस्त गुणों से रहित होना। जब तक आत्मा में गुण होते हैं तब तक वह संसारी हैं और जब सब गुण नष्ट हो गये तो मुक्त हो गया, ऐसा नैयायिकों का सिद्धान्त है और उन गुणों में सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, बुद्धि आदिक ये सभी गुण हैं। तो जहाँ बुद्धि और ज्ञान भी न रहे उन्हें कहते हैं मुक्त जीव। तो जैसे अज्ञ होने से मुक्त जीव जगत की उत्पत्ति में कारण नहीं है ऐसे ही ईश्वर भी न होगा। उत्तर में शंकाकार ने कहा था कि ईश्वर अज्ञ नहीं है, वह नित्य ज्ञान वाला है, ज्ञानवान है और उसका ज्ञान सदा काल रहता है इस पर विचार चल रहा है।

ईश्वर के ज्ञान में भी सर्वथा नित्यत्व की असंभवता—ईश्वर के नित्य ज्ञानवत्त्व के विषय में कुछ वार्तालाप होते होते यह अन्त में बात आती कि ईश्वर का ज्ञान नित्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि जो भी ज्ञान होगा वह परिणमेगा, जानेगा। तो जैसे हम लोगों के ज्ञान नित्य नहीं है, नये-नये होते हैं ऐसे ही इनका भी ज्ञान नया-नया है। नित्य कैसे हो सकता ? हाँ संतान की अपेक्षा मानें तो हम लोगों के ज्ञान भी नित्य हैं, क्योंकि ज्ञान सामान्य से रहित हम लोग कभी नहीं रहा करते तो ज्ञान विशेष की अपेक्षा नित्य ज्ञानपना मानेंगे ईश्वर में और उससे जगत कर्तृत्व सिद्ध करेंगे यह बात न बन सकी। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि क्या हर्ज है ? ईश्वर के ज्ञान में ज्ञानपना भी रहा आगे और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्यपना भी रहा आवे, कोई विरोध नहीं है, आखिर ईश्वर हम लोगों से तो कोई खास ही है फिर उस ईश्वर में हम लोगों की समानता क्यों बतलाते हो ? अगर इस तरह न मानोगे और हम लोगों में जो बात पायी जाती है वही सब ईश्वर में थोपोगे तो वह सर्वज्ञ नहीं बन सकता। यदि नित्य ज्ञान ईश्वर में न मानोगे तो वह सर्वज्ञ न हो सकेगा। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि ईश्वर में ज्ञानपना अगर है और वह होगा प्रमाणरूप तो उससे भिन्न कोई फल भी तो बताना चाहिये। जितने भी ज्ञान होते हैं उन ज्ञानों का फल होता है याने प्रमाण का फल अवश्य होता। तो ईश्वर का ज्ञान अगर प्रमाण है तो उसका कोई दूसरा फल भी होना चाहिये और ईश्वर के अगर फल मान लिया तो फल तो नियम से अनित्य ही होता है, क्योंकि फल तो प्रमाण का कार्य है, वह नित्य कैसे हो सकता ? यहां अर्थ यह समझना कि जितने भी ज्ञान होते हैं, प्रमाण होते हैं जान लिया, अब जानने का कोई फल भी तो होता है। जैन सिद्धान्त में बताया है कि जानने का फल त्यागने योग्य को त्याग देना, ग्रहण करने योग्य को ग्रहण करना और उपेक्षा करने योग्य की उपेक्षा करना, पर नैयायिकों के प्रमाण का फल क्या है ? सो वे बतलायें। प्रथम तो यह ही विपत्ति आयेगी कि अगर ईश्वर के प्रमाण ज्ञान का कोई फल है तो अनित्य हो जायेगा ज्ञान।

परिस्थितिवश एक ही ईश्वर ज्ञान को प्रमाण फलात्मक बता करके मनोरथ की सिद्धि करने का व्यर्थ प्रयास—यदि शंकाकार यह कहे कि ईश्वर का ज्ञान प्रमाणरूप भी है फलरूप भी है याने दो ज्ञान मानने की जरूरत नहीं कि ज्ञान केवल प्रमाणरूप होता और कोई दूसरे फलरूप होता। वही प्रमाणरूप है, वही फलरूप है। तो समाधान में कहते कि नैयायिकों के यहाँ यह बात नहीं बन सकती, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कहा अनेक प्रसंगों में कि अपने आप में अपनी क्रिया नहीं हुआ करती। इसलिए एक ज्ञान को प्रमाण फलात्मक नहीं कह सकते। यदि ईश्वरवादी यह कहे कि ईश्वर का प्रमाणभूत ज्ञान तो नित्य है और फलभूत ज्ञान अनित्य है तो समाधान में कहते कि देखो अब यहां दो ज्ञान मान लिया ईश्वर के—(१) प्रमाणरूप और, (२) फलरूप। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन क्या है ? शंकाकार कहता कि प्रयोजन यह है कि दो ज्ञान मानने का कि ईश्वर है शरीररहित तो उसे सदा सर्वज्ञपना बना रहे इसकी सिद्धि के लिये दो ज्ञान माने हैं। तो उत्तर में कहते कि ज्ञानपना तो नैयायिकों के यहाँ अज्ञान की चीज में भी माना गया है। जैसे कहीं कहते हैं वे कि आत्मा पदार्थ, इन्द्रिय, मन इनका सन्निकर्ष प्रमाण है, कहीं आत्मा पदार्थ व इन्द्रिय इनका सन्निकर्ष प्रमाण है तो कहीं मानते हैं कि आत्मा और पदार्थ इन दोनों का सन्निकर्ष प्रमाण है तो ईश्वर तो तुम्हारा व्यापक है और वहीं सारे पदार्थ पड़े हैं तो सन्निकर्ष तो हो ही गया और सन्निकर्ष है अचेतन। आत्मा को भी उन्होंने अचेतन कहा, वे ज्ञानस्वरूप आत्मा नहीं मानते शंकाकार का प्रमाण तो अचेतन भी हो जाता और फिर सब पदार्थों की जगह ईश्वर भी फैला हुआ है। सन्निकर्ष सदा रहा। तो यों अपनी कल्पित सर्वज्ञता तो यों ही हो जायेगी फिर जरूरत क्या है दो ज्ञान मानने की। शंकाकार कहता है कि ईश्वर है शरीररहित, उसके इन्द्रिय है नहीं, मन भी नहीं। तो सन्निकर्ष तो होगा नहीं और सन्निकर्ष आदिक सामग्री जब न हो सकी तो वह ज्ञानी भी न बन सका, इस कारण से ईश्वर को तो सदा नित्य ज्ञान वाला ही मानना चाहिए जो अनादि काल से सारे पदार्थों को जानता चला आया है। उत्तर में कहते कि क्या आवश्यकता है इन्द्रिय को ? आत्मा और पदार्थ इन दोनों का तो सम्बन्ध है ही, ईश्वर सब जगह व्यापक और पदार्थ भी सब जगह पड़े, तो प्रमाण तो हो ही जायेगा। तो नित्य ज्ञानपना सिद्ध होता, जिससे यह सिद्ध किया जाये कि जगत का रचयिता ईश्वर है और जब इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वीप समुद्रादिक अकृत्रिम सन्निवेशों का अन्य कोई कर्त्ता नहीं है तो अपने आप सिद्ध हो गया कि यह लोक रचना सब अनादि काल से ही सिद्ध है।

निर्देह पुरुष में लोक कर्तृत्व की असंभवता—शंकाकार कहता है कि काल समय ये सब तो कार्य की उत्पत्ति में कारण हैं। काल के देह कहाँ है ? शरीर रहित है काल फिर भी पदार्थों की उत्पत्ति में कारण है। तो यह तो कहना संगत नहीं कि जिसके देह न हो वह पदार्थों की उत्पत्ति का कारण न बनेगा। देह तो काल के भी नहीं है। और जैनों ने भी माना है कि काल द्रव्य, काल-समय पदार्थों के परिवर्तन का कारण है। इस शंका के समाधान में कहते कि इस प्रकरण में यह नहीं कहा गया कि ईश्वर देहरहित है, इतने मात्र से कारण नहीं है, किन्तु देहरहित पुरुष है अतः वह जगत के रचने का कारण नहीं हो सकता। काल शरीररहित है तो भी पदार्थों के परिवर्तन का निमित्त कारण है। मगर ऐसा कोई पुरुष न मिलेगा, जीव न मिलेगा जो देहरहित हो और कुछ रचना कर डाले। यहां तक यह बात सिद्ध हुई कि ईश्वर का भी ज्ञान अनित्य ज्ञान है और वह लोक की रचना का कारण नहीं है मुक्त आत्मा की तरह, क्योंकि मुक्त आत्मा जैसे सर्वथा ज्ञानरहित हैं ऐसे ही वह भी है। अगर ईश्वर को ज्ञ मानते हों, जाननहार तो मुक्त आत्मा को भी जानन-हार मानो। देखो नैयायिक सिद्धान्त में तो यह कहा भी नहीं जा सकता मुख से कि ईश्वर जानन-हार है, ज्ञ, ज्ञाता है, क्योंकि आत्मा को ज्ञान से रहित माना है और ज्ञान का सम्बन्ध होने से आत्मा को ज्ञानवान माना है तो आत्मा को ज्ञानवान तो कहा जा सकता, जैसे धनवान ऐसे ही ज्ञानवान, मगर ज्ञ नहीं कहा जा सकता याने जाननहार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आत्मा का स्वरूप ज्ञान-स्वरूप माना ही नहीं है। ज्ञान अलग है आत्मा अलग है, तो आत्मा ईश्वर को ज्ञ भी नहीं कह सकते।

सामान्यतया लोक की धीमद्धेतुकता में अनापत्ति—अगर यह शंकाकार सामान्य तौर से यह कहे कि जो कुछ आकार पाया जा रहा है वह किसी न किसी बुद्धिमान के हेतु पूर्वक है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। जीव अपने-अपने शरीर के रचने के कारण हैं इसलिये यह सारा जगत बन रहा है, पर एक कोई अलग ईश्वर हो, एक बुद्धिमान हो और वह समस्त जीवों की रचना करे, यह सिद्ध नहीं हो सकता। अनेक प्राणियों के परिणाम हैं, उनसे कर्मबन्ध है, उनके उदय में ऐसा योग है कि यह सब रचना होती चली जाती है। अगर ऐसा न हो तो फिर यह जगत उपभोग्य न रह सकेगा। याने जीव ने ही किया, जीव ने ही भोगा। प्रत्येक जीव अपने सम्पूर्ण शरीर का, कर्म का कारण बनता है और सभी जीव चेतन हैं, ज्ञानवान हैं और सभी जीवों में सामान्य स्वरूप देखो तो परमात्म-स्वरूप है। ईश्वर है, ईश्वर सामान्य बात है. अगर कहो कि यह सारा लोक चेतनकृत है तो यह बात तो बन जायेगी। सभी प्राणी अपने-अपने सम्बन्धित भावों के, शरीर के, कर्मों के उपादान कारण अथवा निमित्त कारण पड़ते हैं।

सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीर से रहित जीव द्वारा लोक कार्य की असंभवता—शंकाकार कहता है कि यहां दोनों तरह से ही किया जाना देखा जा रहा है। शरीरसहित कुम्हार घट को बनाता है और जब एक भव छूट जाता है तो यह आत्मा खुद शरीररहित होकर भी अपने नये शरीर को बनाता है। तो शरीरसहित भी काम करने वाला होता है और शरीररहित भी काम करने वाला होता है इसलिए क्रिया करने की बात सामान्य रखिये। चाहे देह सहित हो, चाहे देहरहित हो, फिर ईश्वर के सम्बन्ध में यह विकल्प क्यों करते कि वह देहसहित है या देहरहित है। देहसहित भी काम करता है और देहरहित भी काम करता है। मरने के बाद यह जीव शरीर को छोड़कर ही तो जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और शरीर रहित जीव नये शरीर को कैसे बना लेता है ? इस शंका के समाधान में कहते हैं कि यह कहना विवेकरहित है। जो जीव यहाँ से मरकर जाता है तो वह अकेला नहीं जाता। उसके साथ सूक्ष्म शरीर रहता है। वह सूक्ष्म शरीर वाला जीव ही तो एक नये शरीर का कारण बनता है जो एकदम देहरहित हो गया याने न कार्माण शरीर है न तैजस शरीर, सूक्ष्म शरीर भी न रहा, ऐसा आत्मा नये देह को नहीं बना सकता, क्योंकि शरीर रहित जीव हो कोई तो मुक्त आत्मा की तरह फिर उसके दूसरे शरीर का सम्बन्ध नहीं बन सकता।

परसंपर्क के अभाव में स्वभाव विरूद्ध कार्य की अनुपपत्ति—शंकाकार कहता है कि यह तो अदृष्ट का फल है कि नया शरीर वह बना लेता है। अदृष्ट आत्मा का एक गुण है और उस अदृष्ट के कारण यह जीव का शरीर बनाता है। इसके उत्तर में कहते हैं कि शंकाकार जैसा समझता है कि अदृष्ट आत्मा का गुण है यह बात बिल्कुल गलत है। अदृष्ट मायने भाग्य, पुण्य-पाप। पुण्य पाप आत्मा का गुण नहीं किन्तु वह तो पुद्गलात्मक है। अदृष्ट, जिसका दूसरा नाम है पुण्य, पाप, धर्म-अधर्म, यदि ये आत्मा के ही गुण हों तो फिर ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण नहीं बन सकते। याने किसी भी पदार्थ का स्वभाव गुण स्वरूप उस पदार्थ की परतन्त्रता का कारण नहीं होता अन्य वस्तु का सम्बन्ध परतन्त्रता का कारण होता है। शंकाकार कहता है कि जैसे आत्मा का बुद्धि गुण आत्मा का गुण है तो, भी आत्मा की परतन्त्रता का कारण बना हुआ है। ज्ञान गुण से आत्मा परतन्त्र है संसार में, जब ज्ञान गुण नष्ट हो जाता है तो आत्मा मुक्त बन जाता है और परतन्त्रता खत्म हो जाती है इसी तरह धर्म-अधर्म भी आत्मा के गुण हैं, इच्छा, द्वेष आदिक आत्मा के गुण हैं और आत्मा की परतन्त्रता के कारण हैं, तो इस तरह यह अदृष्ट इच्छा, द्वेष, पुण्य, पाप ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण बन जायेंगे। समाधान में कहते हैं कि धर्म-अधर्म या इच्छा और द्वेष पुण्य-पाप ये सर्वथा आत्मा के गुण हो ही नहीं सकते, क्योंकि कर्म के उदय का निमित्त न हो तो ये उत्पन्न नहीं हो सकते। और कर्मोदय के निमित्त से जो भाव बनते वे भाव कर्म कहलाते। तो भाव कर्म तो परतंत्रता के कारण हैं, पर आत्मा का गुण परतन्त्रता में कारण नहीं हो सकता। इच्छा, द्वेष या धर्म-अधर्म ये सब मोह भाव परतंत्रता में ही हुआ करते हैं, क्योंकि जो स्वतन्त्र आत्मा हो, चाहे राग द्वेष से उपद्रुत न हो तो उसके कभी इच्छा और द्वेष सम्भव ही नहीं हो सकते। तो धर्म-अधर्म आत्मा के गुण नहीं हैं, क्योंकि ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण हैं मोह विशेष होने से। जो-जो परतन्त्रता के कारण बनते हैं वे अन्य पदार्थ ही हुआ करते हैं, खुदका गुण नहीं हुआ करते, तब फिर है क्या कि ये इच्छा द्वेष, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप ये सब पुद्गल परिणात्मक हैं। कोई पुद्गल कर्म का निमित्त पाकर हुए हैं और कोई सीधे ही पुद्गल के परिणाम हैं। तो अदृष्ट शरीर का कारण नहीं कहा जा सकता। देखो संसारी प्राणी अदृष्ट सहित तो है ही और दूसरी बात स्थूल शरीर पाने से पहले शरीर रहित नहीं रहा यह जीव। सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध है तब ही तो यह स्थूल शरीर को पाता है। तो यों ईश्वर जगत का रचयिता न बना और यह द्वीप समुद्र की जो रचना बताया है वह सब अनादि सिद्ध है। अकृत्रिम है और हो रहे हैं तो उनमें जो एकेन्द्रिय जीव हैं—जल में पृथ्वी में उन एकेन्द्रिय जीवों के साथ अदृष्ट लगा है, कर्म लगा है उन कर्मोदय वश उनके शरीर के परमाणु आते-जाते रहते हैं फिर भी इनका सन्निवेश (आकार) ऐसा ही अनादि काल से है। और ऐसा ही रहेगा।

सन्निवेश विशिष्टता व अनादि सिद्धता में अविरोध—अब यहां शंकाकार कहता है कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

महेश्वर के पृथ्वी आदिक ८ मूर्तियाँ मानी गई हैं याने पृथ्वी, जल आदिक ये महेश्वर की मूर्तियाँ हैं ये इससे अलग चीज नहीं हैं जो महेश्वर इनको अलग से रचता है यह तो खुद महेश्वर के अंग जैसे हैं और उनके उत्पन्न होने में वही महेश्वर कारण है याने महेश्वर के ही तो ये सब शरीर हैं पृथ्वी, जल आदिक और इनको वह महेश्वर ही उत्पन्न कर लेता है। तो उत्तर में कहते कि यह तो आपने अपने ही प्रतिकूल बात कही। जैसे महेश्वर अपनी पृथ्वी आदिक समुदाय को उत्पन्न कर लेता इसी तरह समस्त जीव अपनी-अपनी मूर्ति को मायने शरीर को उत्पन्न कर लिया करते हैं याने शरीर शरीरोत्पत्ति के वे सभी जीव कारण पड़ते हैं। तो सभी में हेतुपना आया इस जगत की रचना का, न कि किसी एक ईश्वर में जगत की रचना का हेतुपना आयेगा। यदि शंकाकार यह कहे कि पृथ्वी आदिक मूर्तियों को तो ईश्वर रचता है मगर पहले पृथ्वी आदिक मूर्तियाँ और थीं। उसके बाद रचा तो फिर प्रश्न उत्पन्न होते जायेंगे कि उनसे पहले और मूर्तियाँ थीं, उनसे पहले और थी तो उनको कैसे रचा गया? यों कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकती। अगर कहो कि ये सब अनादि मूर्तियाँ है, कभी रची गई ऐसा नहीं तो यह बतलाओ कि अनादि काल से इनका आकार है तो जिसका आकार है वह अनादि से भी तो रह सकता है, शंकाकार के कथन से ही सिद्ध हो गया कि जिस महेश्वर की मूर्तियाँ अनादि काल से हैं और उनमें आकार बनता पृथ्वी का आकार, जल का आकार तो आकार विशिष्ट भी रहे आयें और अनादि भी रहे आयें तब यह शंकाकार का हेतु सही न रहा कि यह सारा जगत किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है क्योंकि आकार वाला होने से। आकार वाला भी रहे और बिना किसी के बनाया हुआ भी रहे, जैसे महेश्वर की मूर्तियाँ पृथ्वी वगैरह आकार वाली भी हैं और अनादि भी हैं। उतनी तो साफ बात है, अब मुख है सो जो चाहे बोल दे ऐसी बात न करना चाहिये।

लोकानुभव से भी द्वीप समुद्रादिक की कृतकता का असमर्थन—एक बात यह भी है कि लोगों को पुराने जीर्ण महल, कुआँ आदिक को देखकर मन में यह बात आती है कि ये किसी ने बनाया था, चाहे हजार वर्ष पहले बनाया हो लेकिन सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी इनको देखकर कभी मन में यह बात नहीं आती कि किसी ने बनाया। चीजों की अलग-अलग बात है, जो किया जा सकता है उसमें ही यह बुद्धि बनती कि इसको किसी ने बनाया था। जो किया ही न जा सके, जो अकृत्रिम है उसके बारे में किसी को संशय नहीं होता कि ये सब किसी के बनाये हुये हैं, और बनाया है यह बात तब ही तो बनेगी, जैसे कुम्हार ने घड़ा बनाया, कुम्हार बिना घड़ा बनते नहीं देखा। जब व्यतिरेक भी मालूम हो तब ही तो निर्णय होता है। तो ईश्वर का तो व्यतिरेक कभी होता ही नहीं है। जब ऐसा समय है कि जब ईश्वर न हो? ईश्वर के होते सन्ते बने, और ईश्वर जब न हो तब न बने, ऐसी बात पायी जाये तो निर्णय बने कि किसी ने बनाया है मगर व्यतिरेक तो सम्भव नहीं है। तो नित्य ईश्वर या नित्य ज्ञान वाला ईश्वर जगत का कर्त्ता बनता है यह जो पक्ष है वह पक्ष अयुक्त बैठता है।

द्रव्य पर्यायात्मक होने से सर्व पदार्थों की नित्यानित्यात्मकता—शंकाकार ने जो दृष्टान्त दिया था कि कालादिक द्रव्य भी तो नित्य हैं, सर्वगत हैं और वे पदार्थों की उत्पत्ति के कारण हैं सो उस सम्बन्ध में भी यह समझना चाहिए कि काल द्रव्य और आकाश द्रव्य आदिक की पर्यायें नित्य नहीं है सर्वगत नहीं है, द्रव्यार्थिक नय से काल, आकाश आदिक सभी नित्य हैं, पर द्रव्यार्थिक नय से सभी पदार्थ अनित्य हैं। मायने पर्यायें होती हैं और मिटती हैं ऐसा काल जैन सिद्धान्त में नहीं माना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गया कि जिसकी पर्यायें न हों, और यद्यपि आकाश शर्वव्यापक है और नित्य है मगर उसे भी अगर पर्यायरहित माना जाये तो उस आकाश का भी ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं हो सकता। याने जो-जो भी सत् है वे सब पर्यायसहित हैं। पर्यायरहित कुछ भी अस्तित्व ही नहीं रख सकता है। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य हैं वे समस्त लोक में व्यापक हैं मगर द्रव्य दृष्टि से ही नित्य है, पर्याय दृष्टि से तो अनित्य है। इस तरह अपने कार्य की उत्पत्ति में ये सब निमित्त हो जाते हैं। वस्तु के परिणमन में काल द्रव्य निमित्त, पदार्थों के अवगाह में आकाश निमित्त, जीव और पुद्गल के चलने में धर्म द्रव्य, निमित्त और ठहरने में अधर्म द्रव्य निमित्त, ये कारण तब ही कहलाते हैं कि जब ये स्वयं अनित्य हैं पर्याय दृष्टि से।

सिसृक्षा की बात निकाल कर परद्रव्य का कर्तृत्व सिद्ध करने का विफल प्रयास—यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि ऐसी ही बात तय की है कि कोई अनित्य ही दूसरे पदार्थ का कारण बन सकता है तो महेश्वर का गुण है सृष्टि करने की इच्छा करना। तो यह सिसृक्षा अनित्य है और अव्यापक है सो उस इच्छा को जगत् सृष्टापन का कारण मान लो और इसमें व्यतिरेक भी बन गया जब महेश्वर के इच्छा नहीं हैं तब ये उत्पन्न नहीं होते। जब महेश्वर की इच्छा होती है तब ये उत्पन्न हो जाते। जो व्यतिरेक भी बन गया और सृष्टि की इच्छा यह अनित्य भी हो गया। तो इस तरह से जगतकर्त्ता महेश्वर को बताना सिद्ध हुआ और यों ये द्वीप समुद्र आदिक जो रचना बतायी गई है वह भी ईश्वरकृत कहलायी कोई अकृत्रिम नहीं है। इस शंका के समाधान में कहते हैं कि महेश्वर ने जो सृष्टि करने की इच्छा की याने सिसृक्षा की तो उस इच्छा की उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि जो-जो अनित्य हैं वे उत्पन्न ही तो होते हैं। तो सिसृक्षा उत्पन्न कैसे हुई ? जिस इच्छा के द्वारा सृष्टि की, उस इच्छा की उत्पत्ति अगर अन्य इच्छा से हुई मायने सृष्टि करने की इच्छा पहले थी उससे यह इच्छा बनी, यदि ऐसा मानते हो तो उस पहली सिसृक्षा के उत्पन्न होने में दूसरी सिसृक्षा हुई, इस तरह से अपनी इच्छाओं को उत्पन्न करने का ही एक प्रबन्ध बना ले, बाद में जगतकर्त्ता की बात सोच यों अनवस्था दोष आता है। यदि ऐसा माना जाये कि महेश्वर के जो सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, वह अन्य इच्छा के बिना हो जाती है तो ठीक है। जब एक सिसृक्षा बिना हेतु के उत्पन्न हो गई तो इस जगत का यह सारा सन्निवेश द्वीप समुद्रादिक ये बिना कारण के ही हो जाये, इसमें क्यों आनाकानी करते ? और, यह बात सबको स्पष्ट हो जाती है कि जो-जो भी जीव हैं, पृथ्वी के जीव हों, जल के जीव हों उन प्राणियों के अदृष्ट का ऐसा ही सामर्थ्य है कि ये सब पृथ्वी आदिक यों ही स्थिर रहते हैं। पृथ्वी में अनगिनते जीव हैं कोई जीव मरा, कोई जीव आया इस तरह से इन जीवों के आते-जाते रहने पर भी इनका आकार बिगड़ता नहीं। आकार वही रहता है, इसी प्रकार जो-जो भी अकृत्रिम रचना है वह सब इस प्रकार अनादि से सिद्ध है। तो जैसे महेश्वर की मूर्तियाँ सृष्टि करने की इच्छा यह तो बाद में उत्पन्न हुई मान ली गई है और कभी इसका विरोध नहीं मानते। तो यह ही बात समस्त पदार्थों की है कि ये सब स्वतन्त्रता से उत्पन्न होते हैं सर्व कार्य और सदा तक चलते रहते हैं।

सहकारी सामग्री कारण की विरहता का ब्याज करने में ईश कर्तृत्ववाद में विडम्बना—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि ईश्वर की इच्छा तो सदा रहती है मगर जब तक सहकारी और कारण न मिले तब तक सृष्टि नहीं बनती। तो उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है कि और जो सहकारी कारण बता रहे हो वे भी तो महेश्वर से उत्पन्न होते हैं और अगर नहीं होते तो कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अकृत्रिम सिद्ध हो गईं। तो जब सहकारी कारणों को एक महेश्वर करता और सिसृक्षा को भी महेश्वर करता तो व्यतिरेक तो कभी सिद्ध ही नहीं हो सकता, तो सब कुछ एक ही बार में हो जाना चाहिए, और मानो कि वह सहकारी कारण भी सदा रहा करता है तो सदा ही कार्य होते रहना चाहिये। इस तरह युक्ति सिद्ध नहीं है कि इन द्रष्यमान आकार वाले पृथ्वी आदिक को किसने बनाया है? ये तो पदार्थ हैं उनमें स्वयं द्रव्यपना है तो वे निरन्तर परिणमते रहते हैं। जैसा योग मिले, जैसा निमित्त मिले उस अनुकूल सभी पदार्थ स्वयं ही परिणमते चले जाते हैं। तो पदार्थों में परिणमने का स्वयं स्वभाव है, इन्हें कोई परिणमाता नहीं। शंकाकार जो यह कह रहा है कि महेश्वर की सिसृक्षा कार्य की उत्पत्ति में कारण है तो सिसृक्षा होने पर तुरन्त कार्य क्यों नहीं हो जाता? कभी कार्य होते कभी नहीं होते। तो जो यह समाधान दे रहा था शंकाकार कि अन्य सामग्री न मिले तो उत्पत्ति नहीं होती तो अन्य सामग्री को भी तो सिसृक्षा उत्पन्न कर देगी। दूसरी बात यह है कि सिसृक्षा हुई, सामग्री तो है ही तो एक साथ तीन काल सम्बन्धी पर्याय क्यों नहीं हो जाती? उनमें क्रम क्यों पड़ा हुआ है? अगर यह उत्तर दिया जाये कि क्रम से पृथ्वी आदिक कार्यों का ऐसा स्वभाव है कि उत्पत्ति ही इस तरह होती है तो यह बतायें कि अन्य की उत्पत्ति होने में, अन्य स्थावर आदिक कार्यों की उत्पत्ति में कारण उनको ही क्यों न मानना चाहिये, यदि शंकाकार कहे कि नाना शक्तियाँ ही एक सिसृक्षा में निमित्तभूत होती हैं तो समस्त क्रम में होने वाले जो कार्य कारण हैं उनमें किए हुए अनेक शक्तियों रूप एक ही महेश्वर की इच्छा बन जाए। अगर वह इच्छा अन्य इच्छा से निरपेक्ष है तो दुनिया भरके वे सब कार्य अपने आप हो जायें, इसमें महेश्वर की इच्छा लगाने की क्या आवश्यकता है?

वर्णित द्वीप समुद्रादिक की पराकृतता और उसके परिचय से जीवतत्त्व के परिचय में स्पष्टता—सारांश यह है कि किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं हो सकता कि इन स्वत: सिद्ध समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाला कोई एक बुद्धिमान ईश्वर है। जितने पदार्थ हैं उनमें स्वयं स्वभाव पड़ा हुआ है कि वे परिणमन करते रहें और यदि विरूद्ध उपाधियां संग में हैं तो विकृत परिणमन करते रहेंगे, और उपाधि रहित स्थिति है तो स्वभाव परिणमन करते रहेंगे, यह सत्तासिद्ध अधिकार है समस्त पदार्थों का। उनकी सत्ता है सो सदा वे परिणमते रहेंगे। उन्हें परिणमन करने के लिए किसी अन्य की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। तो जो हेतु दिया था कि ये द्वीप समुद्र आदिक सभी पदार्थ आकार वाले हैं, इस कारण किसी न किसी एक धीमान का कार्य होना ही चाहिये। जैसे घट-पट आदिक आकार वाले पदार्थ हैं तो इनके करने वाले कुम्हार, कोरी आदिक होते ही हैं, यह हेतु अनैकांतिक है, मायने आकार किसी के किये हुये पदार्थ में भी होता और अकृत पदार्थ याने जिसे किसी ने किया ही नहीं, जो किसी के द्वारा किया ही न जा सके उन पदार्थों में भी आकार हुआ करता है। तो इस प्रकार कार्यपना या आकार विशेष होना या अचेतन उपादान होना या ठहर-ठहरकर काम होना ये कोई भी कारण इस जगत को किसी एक ने रचा यह सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं। इस अध्याय में मध्यलोक का आकार विशेष रूप से कहा गया है और पहले अधोलोक का भी निर्देश किया गया है। ये सभी के सभी स्वत: सिद्ध पदार्थ हैं और अनादि से चले आये हैं, अनन्त काल तक रहेंगे। इसमें कहाँ-कहाँ क्या-क्या जीव रहते हैं, इन सबका परिचय होने पर एक जीवतत्त्व क्या है, इसके सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन चौदहवाँ भाग समाप्त हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com